नयचक्र गाइड

(अध्यात्म के नय)

लेखिका :

विद्वत्रत्न डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया

बी.ए. ऑनर्स, एम.ए., पीएच.डी., (स्वर्णपदक प्राप्त)

ए-१७०४, गुरुकुल टॉवर, जे.एस. रोड़,

दहीसर, पश्चिम, मुम्बई-६८

मो. ०९८२१९२३७२२

प्रकाशक :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर

ए-4, बापूनगर जयपुर-302015

फोन : 0141-2705581, 2707458

प्रथम संस्करण : ३ हजार

मूल्य : ?

मुद्रक :
प्रिन्ट 'ओ' लैण्ड
बाईस गोदाम,
जयपुर

अपनी बात

आध्यात्मिक वातावरण से ओतप्रोत इस समय में नयज्ञान की आवश्यकता से सभी परिचित हैं। सभी नयों के बारे में विशेष जानकारी भी चाहते हैं, पर नयों की दुरूहता और विस्तार से घबड़ाते हैं। अतः संक्षेप रुचि पाठकों के दृष्टिकोण से बनाई गई इस पुस्तक में सरलता का विशेष ध्यान रखा गया है। इसी उद्देश्य से नयों के क्रम देने में फेरफार किया है, पहले व्यवहारनय फिर निश्चयनय को समझाया गया है। व्यवहारनय के भेद-प्रभेद में भी पहले असद्भूत बाद में सद्भुत; पहले उपचरित बाद में अनुपचरित को लिया है ह्न इसीप्रकार इस पुस्तक में सर्वत्र समझना चाहिए।

जिन अध्यात्म में प्रवेश के लिए अध्यात्म के नयों को समझना अति आवश्यक है अतः इस पुस्तक में मात्र अध्यात्म के नयों की ही चर्चा की गई है।

'जीवन में सुख और सफलता' प्राप्त करने की प्रथम सीढ़ी 'नय' ज्ञान ही है। अपेक्षा (नय) ज्ञान के बिना कोई भी संवाद संभव ही नहीं है। विश्व में नयज्ञान की सूक्ष्म पर विस्तृत चर्चा मात्र जैनदर्शन की देन है।

वस्तुतः वस्तु कैसी है? व्यवहार में उसे क्या कहते हैं? अजीव होते हुए भी शरीर को सजीव क्यों और कब कहा जाता है? इसका प्रयोजन एवं कारण क्या है? आदि सभी बातें नयज्ञान से ही स्पष्ट होती हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'नयचक्र गाईड' डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल द्वारा लिखित परमभाव प्रकाशक नयचक्र के प्रथम दो अध्यायों के आधार पर बनाई गई है।

आज का युग गाईड़ का युग है। आज की युवा पीढ़ी स्कूल की पढ़ाई भी गाईड़ से ही करती है अतः उन्हें समझाने के लिए उन्हीं की रुचि अनुसार नयों को संक्षेप में गाईड़ शैली में प्रस्तुत किया गया है।

यह गाईड़ पढ़कर वे नयों का सामान्य स्वरूप समझें और उनमें नयों को विस्तार से जानने की जिज्ञासा जाग्रत हो तथा नयचक्र में प्रवेश के लिए यह पुस्तक गाईड़ का काम करे ह्न ऐसी मेरी भावना है।

ह्न डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया

प्रकाशकीय

'नयचक्र गाईड' टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर से प्रकाशित नवीनतम कृति है। विदुषी लेखिका डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया ने अध्यात्म के नयों को सरल, संक्षेप में प्रस्तुत कर नय जैसे दुरूह विषय को जनसामान्य से परिचित कराने का प्रयत्न किया है।

इसमें आत्मानुभूति की दृष्टि से उपयोगी अध्यात्म के नयों की समस्त जानकारी सरल शब्दों में संक्षेप में प्रस्तुत की गई है।

नयों जैसा दुरुह विषय स्मृति से विस्मृत न हो जाए इसके लिए उसका बार-बार पठन-पाठन आवश्यक है। पाठक नयों का पुनः-पुनः रिवीजन कर सकें - इस दृष्टिकोण से प्रस्तुत पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है।

वस्तुतः तो अध्यात्म के नयों का प्रतिदिन पास होना चाहिए, तभी वे याद रह सकते हैं। अतः इसी दृष्टिकोण से प्रस्तुत कृति में निश्चय-व्यवहार का अन्तर व उनके भेद-प्रभेदों का अन्तर चार्ट के माध्यम से बताया गया है। जिनका प्रतिदिन पाठ कर हम नयों की सामान्य जानकारी याद रख सकते हैं।

संक्षेप रुचि पाठकों के दृष्टिकोण से बनाई गई प्रस्तुत पुस्तक पढ़कर पाठक जिनागम के मर्म को समझ सकते हैं।

नयों की गहरी एवं स्पष्ट समझ, हमें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सर्वोच्च शिखर पर बैठाने की सामर्थवान विधा है। इस कृति से आपके ज्ञान को वह, प्रभावी गुण मिलें जो आपको सफलतम व्यक्ति बना दे, इसी कामना के साथ यह प्रस्तुत पुस्तक आपके समक्ष है।

अध्यात्म के नय

नयज्ञान की आवश्यकता

नयों का सही स्वरूप समझना निम्न कारणों से आवश्यक है -

१. जिनागम को समझने के लिए।
२. वस्तु स्वरूप के सच्चे ज्ञान के लिए।
३. आत्मा के सही (सम्यक) ज्ञान के लिए।
४. आत्मानुभव के लिए।
५. सांसारिक दुःखों से बचने के लिए।
६. मिथ्यात्व के नाश के लिए।
७. सच्चे सुख की प्राप्ति के लिए।

नय समझे बिना जिनागम के मर्म को समझ नहीं सकते; क्योंकि समस्त जिनागम नयों की भाषा में निबद्ध है। अतः जिनागम के मर्म को समझने के लिए नयज्ञान की आवश्यकता है।

वस्तु तो अनन्तगुणों एवं परस्पर विरुद्ध प्रतीत होने वाले अनन्त धर्मयुगलों का पिण्ड है। अनन्तधर्मात्मक वस्तु को एक साथ जाना तो जा सकता है, पर कहा नहीं जा सकता है। अनन्तगुणात्मक, अनन्तधर्मात्मक वस्तु का कथन अंशों में ही हो सकता है। अंशों में कथन अपेक्षापूर्वक ही होता है। अपेक्षापूर्वक कथन को ही नय कहते हैं। अतः वस्तु के सच्चे ज्ञान के लिए नयज्ञान की आवश्यकता है।

सांसारिक दुःखों का नाश और सच्चे सुख की प्राप्ति मिथ्यात्व के नाश के बिना संभव नहीं। मिथ्यात्व का नाश आत्मानुभव के बिना संभव नहीं। आत्मा का अनुभव आत्मा के सही (सम्यक्) ज्ञान के बिना संभव नहीं। आत्मा का सही ज्ञान नयों के द्वारा ही होता है, अतः हमें नयज्ञान की आवश्यकता है।

अपेक्षा का प्रयोग लोकव्यवहार में हम दिन-रात करते हैं। चीनी का डिब्बा, पप्पू का पलंग आदि प्रयोगों में डिब्बा प्लास्टिक या स्टील का होता है और पलंग लकड़ी का; पर उनका उपयोग करने की अपेक्षा हम चीनी का डिब्बा, पप्पू का पलंग कहते हैं। इस प्रकार के प्रयोगों में अपेक्षा समझे बिना लोकव्यवहार चल नहीं सकता।

इसप्रकार हम देखते हैं कि अपेक्षा सहित प्रयोग करने पर भी अधिकांश जन नयों का स्वरूप नहीं जानते, भेद-प्रभेद नहीं समझते; क्योंकि जैनदर्शन के अतिरिक्त विश्व के किसी भी दर्शन में नयों की चर्चा ही नहीं है, जबकि जिनागम में नयों के स्वरूप और भेद-प्रभेद पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

नय का सामान्य स्वरूप

जो वस्तु को अनेक स्वभावों से पृथक् करके एक स्वभाव में स्थापित करता है, उसे नय कहते हैं।[१] अथवा जो अपर पक्ष का निषेध न करते हुए वस्तु के अंश का कथन करता है, उसे नय कहते हैं।[२] कहीं-कहीं श्रुतज्ञान के विकल्प को, ज्ञाता के अभिप्राय को[३] और वक्ता के अभिप्राय[४] को नय कहा गया है।

जगत की समस्त वस्तुएँ सामान्य-विशेषात्मक हैं। ये सामान्य-विशेषात्मक वस्तुएँ ही प्रमाण की विषय हैं, ज्ञान की विषय हैं।[५] इन्हें सम्यक् जानने वाला ज्ञान ही प्रमाण हैं[६] और नयप्रमाण का एकदेश है।

१. 'नाना स्वभावेभ्यो व्यावृत्य एकस्मिन् स्वभावे वस्तु नयति प्रापयतीति वा नयः'।
परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृ.-२२
२. (अ) अनिराकृतप्रतिपक्षो वस्त्वंगग्राही ज्ञातुरभिप्रायो नमः। प्रमेयकमल मार्तण्ड पृ. ६७६
(ब) 'प्रमाणेन वस्तुसंगृहीतार्थकांशो नयः। परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृ.-२२
३. (अ) श्रुत विकल्पो वा ज्ञातुरभिप्रायो वा नयः; आलापपद्धति। वही, पृ.-२२
(ब) णाणं होदि प्रमाणं णओ वि णादुस्स हिदियभावत्थो; तिलोयपण्णति, अ.-१, गा.८३
४. स्याद्वाद मंजरी, श्लोक २८ की टीका।
५. सामान्य विशेषात्मा तदर्थो वि षयः। परीक्षामुख, चतुर्थ परिच्छेद, सूत्र-१
६. सम्यग्ज्ञानं प्रमाणं। न्यायदीपिका, प्रथम पखकाश, पृ.-१

प्रमाण का विषय सम्पूर्ण वस्तु है और नय का विषय अंश है।

वस्तु के अंश का कथने करन के कारण नयों की प्रवृत्ति वस्तु के एकदेश में ही होती है। वस्तु के एकदेश का निरूपण करने वाला होने से नयों का कथन अपेक्षा सहित (सापेक्ष) ही होता है, अपेक्षा रहित (निरपेक्ष) नहीं। नयों के कथन के साथ यदि अपेक्षा न लगाई जावे तो जो बात वस्तु के अंश के बारे में कही जा रही है, उसे सम्पूर्ण वस्तु के बारे में समझ लिया जा सकता है, जो कि सत्य नहीं होगा। जैसे - यदि हम कहें कि हाथी खंभे के समान होता है, तो यह कथन पैर की अपेक्षा तो सही है; क्योंकि हाथी का पैर खंभे जैसा होता है, पर यदि अपेक्षा बताए बिना पूरे हाथी के बारे में यही कथन किया जाए तो यह सही नहीं होगा। अथवा जैसे हम कहें कि 'आत्मा अनित्य है' यह कथन पर्याय अपेक्षा तो सत्य है, पर यदि इसे द्रव्यपर्यायात्मक आत्मवस्तु के बारे में समझ लिया जाए तो सत्य नहीं होगा; क्योंकि द्रव्यपर्यायात्मक आत्मवस्तु तो नित्यानित्यात्मक है।

इसीलिए सापेक्षनय को ही सम्यक्नय कहा है, निरपेक्ष को नहीं। निरपेक्षनय मिथ्या होते हैं, दुर्नय कहलाते हैं।[१]

सम्यक्नय ही नय हैं और वह नय ज्ञानी के ही होते हैं, अज्ञानी के नहीं। अज्ञानी के नय, नय नहीं; नयाभास हैं।

ज्ञानी वक्ता अपने अभिप्रायानुसार जब अनन्तधर्मात्मक वस्तु के एक धर्म का कथन करता है, तब कथन में वह धर्म मुख्य और अन्य धर्म गौण रहते हैं। यह मुख्यता-गौणता वस्तु में विद्यमान गुणों-धर्मों की अपेक्षा नहीं होती, अपितु वक्ता की इच्छा व प्रयोजन के अनुसार होती है।

१. (अ) निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तुतेऽर्थकृत्; आ. समन्तभद्र,
आप्तमीमांसा, कारिका १०८
(ब) ते सावेक्खा सुणया णिखेक्खा ते वि दुण्णया होंति; कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा-२६६

मुख्यता–गौणता व विवक्षा–अविवक्षा वाणी के भेद हैं, वस्तु के नहीं। वस्तु में तो सभी गुण–धर्म समान हैसियत से सदा विद्यमान रहते हैं। उनको एक साथ कहने की सामर्थ्य वाणी में न होने के कारण वाणी में मुख्य–गौण का भेद पाया जाता है।

मुख्य धर्म को विवक्षित धर्म और गौण धर्म को अविवक्षित धर्म कहते हैं। नयों के कथन में अविवक्षित धर्मों का निषेध नहीं किया जाता, अपितु उनके संबंध में मौन रहा जाता है। अविवक्षित धर्मों के संबंध में मौन रहना, कुछ नहीं कहना ही गौणता है।

अविवक्षित धर्मों के निषेध को नयाभास कहते हैं।

जो नय मूलरूप से आत्मा के स्वरूप को समझने–समझाने में ही काम आते हैं, उन्हें अध्यात्म के नय कहते हैं।

जैनदर्शन में मोटे तौर पर अध्यात्म के मूलनय दो बताए गए हैं – **१. व्यवहारनय और २. निश्चयनय।**

सामान्य–विशेषात्मक वस्तु को सामान्य और विशेष – इन अंशों में विभाजित करके समझा जाता है। इनमें सामान्यांश को विषय करने वाला निश्चयनय होता है और विशेषांश को विषय बनाने वाला व्यवहारनय होता है।

(१) व्यवहारनय

विभिन्न शास्त्रों में व्यवहारनय के बारे में विभिन्न कथन प्राप्त होते हैं – जिनमें कतिपय निम्न हैं –

१. जो एक वस्तु के धर्मों में कथंचित् भेद व उपचार करता है, उसे व्यवहारनय कहते हैं।[१]

२. उपचरित निरूपण को व्यवहार कहते हैं।[२]

१. (अ) द्रव्यस्वभाव प्रकाशकनयचक्र, गाथा–२६४
(ब) भेदोपचारतया वस्तु व्यवह्रियत इतिव्यवहारः। आलापपद्धति।

२. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ २४८–२४९

३. पराश्रित कथन को व्यवहार कहते हैं।[१]

४. जिसका विषय भिन्न कर्त्ता––कर्मादि हैं, वह व्यवहारनय है।[२]

५. एक ही द्रव्य के भाव को अन्य द्रव्य के भावस्वरूप कहना व्यवहारनय है। जैसे – घी का संयोग देखकर मिट्टी के घड़े को घी का घड़ा कहना व्यवहार कथन है।[३]

६. जिस द्रव्य की जो परिणति हो उसे अन्य द्रव्य की कहना व्यवहारनय है।[४]

७. व्यवहारनय स्वद्रव्य को, परद्रव्य को व उनके भावों को व कारण–कार्यादिक को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है।[५]

८. व्यवहारनय अभूतार्थ है।[६]

उक्त समस्त कथनों पर ध्यान देने पर निम्न निष्कर्ष निकलते हैं –

परिभाषा – जो नय एक अखण्ड वस्तु में भेद करता है और दो भिन्न–भिन्न वस्तुओं में अभेद स्थापित करता है, उसे व्यवहारनय कहते हैं। एक ही वस्तु के धर्मों में व्यवहारनय कथंचित् भेद व उपचार करता है।

कार्य – व्यवहारनय का कार्य अभेद वस्तु में भेद करके समझाने के साथ–साथ भिन्न–भिन्न वस्तुओं के संयोग व उसके निमित्त से होने वाले संयोगीभावों का ज्ञान कराना और कर्ता–कर्म का भेद कर भिन्न–भिन्न द्रव्यों के बीच कर्ता–कर्म का संबंध बनाना है।

कथन – व्यवहारनय के कथन पराश्रित कथन हैं, सापेक्ष कथन हैं अतः उपचरित कथन हैं। दो द्रव्यों के बीच एकता संबंधी संयोगी

१. समयसार गाथा २७२ की आत्मख्याति टीका
२. (अ) तत्त्वानुशासन, आ. नागसेन (ब) अनागारधर्मामृत; पं. आशाधरजी, अ.–१, श्लोक २
३. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ–२४९
४. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ २५०
५. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ–२४९
६. (अ) समयसार गाथा –११ (ब) पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, श्लोक ५

कथन उपचरित कथन हैं। जैसे – एक द्रव्य के भाव को दूसरे द्रव्य का बताना, एक द्रव्य की परिणति को दूसरे द्रव्य की बताना, दो द्रव्यों की मिली हुई परिणति को एक द्रव्य की कहना, दो द्रव्यों के कारण-कार्यादिक को मिलाकर कथन करना – ये सब उपचरित कथन हैं, व्यवहारनय के कथन हैं।

भूतार्थता-अभूतार्थता – व्यवहारनय के कथन प्रयोजनवश किए गए सापेक्ष कथन हैं, पराश्रित कथन हैं; अतः कथंचित् भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं और कथंचित् अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं; सर्वथा अभूतार्थ नहीं है क्योंकि व्यवहारनय के विषयभूत भेद और संयोगों का अस्तित्व है। अतः विषय की दृष्टि से व्यवहारनय कथंचित् भूतार्थ हैं; किन्तु भेद और संयोगों के आश्रय से आत्मा का अनुभव नहीं होने के कारण व्यवहारनय कथंचित् अभूतार्थ है। अथवा व्यवहारनय के विषय की सत्ता का अभाव नहीं है, अतः व्यवहारनय कथंचित् भूतार्थ है और निश्चय के समान उपादेय नहीं है, अतः कथंचित् अभूतार्थ है अथवा व्यवहारनय किन्हीं-किन्हीं को कभी-कभी प्रयोजनवान होता है, अतः कथंचित् भूतार्थ है और उसके आश्रय से मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती, अतः कथंचित् अभूतार्थ है, असत्यार्थ है।

यहाँ गौण के अर्थ में असत्यार्थ का प्रयोग किया गया है, असत्य के अर्थ में नहीं। चूँकि व्यवहारनय भेदरूप कथन करता है और भेददृष्टि में निर्विकल्पता नहीं होती, इसलिए प्रयोजनवश भेद को गौण करके असत्यार्थ कहा है। जैसे – शास्त्रों में पर्याय को असत्यार्थ कहा है, यहाँ पर्यायें हैं ही नहीं – ऐसा नहीं है। किन्तु निश्चय की मुख्यता से पर्याय को गौण करके व्यवहार कहकर वहाँ से दृष्टि हटाने के प्रयोजन से उन्हें असत्यार्थ कहा है, अभूतार्थ कहा है।

अभूतार्थ व्यवहार का प्रतिपादन क्यों? – यहाँ प्रश्न उठता है कि

यदि व्यवहारनय असत्यार्थ है, अभूतार्थ है तो जिनवाणी में उसका प्रतिपादन क्यों किया गया है?

अनेकान्तात्मक वस्तु का विचार और विवाद का परिहार एक ही नय से नहीं होता, इसलिए वस्तु विचार के समय और किसी विषय में विवाद या संदेह होने पर जो ज्ञान दोनों नयों का आश्रय लेकर प्रवर्त होता है, वही प्रमाण माना गया है; अतः व्यवहार का प्रतिपादन आवश्यक है।

दूसरे तीर्थ की स्थापना के लिए भी व्यवहारनय आवश्यक है; क्योंकि निश्चयनय अनिर्वचनीय है और उपदेश की प्रक्रिया में व्यवहारनय प्रधान होता है।

तीसरे व्यवहार के बिना प्रारंभिक भूमिका में निश्चय समझा नहीं जा सकता और उसका प्रतिपादन भी संभव नहीं है। जैसे – मलेच्छ को म्लेच्छ भाषा के बिना समझाया नहीं जा सकता, वैसे ही व्यवहार के बिना निश्चय का उपदेश अगशक्य है। अतः निश्चय का प्रतिपादक होने के कारण अभूतार्थ व्यवहारनय का प्रतिपादन किया गया है।

उक्त तीनों कारणों से ही व्यवहारनय को कथंचित् भूतार्थ कहा गया है।

निश्चय का प्रतिपादक व्यवहारनय अभूतार्थ क्यों? व्यवहार-नय साक्षात्प्रयोजनभूत न होने से अभूतार्थ है; क्योंकि व्यवहारनय के विषयभूत संयोग व संयोगीभावों के ज्ञान से मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती। अतः उसके द्वारा मुक्ति का प्रयोजन सिद्ध न होने से यह नय अप्रयोजनभूत है। अप्रयोजनभूत होने से यह नय कथंचित् अभूतार्थ है।

अभूतार्थ द्वारा प्रतिपादित निश्चय भूतार्थ क्यों? – निश्चयनय साक्षात् प्रयोजनभूत होने से भूतार्थ है; क्योंकि इसी नय के विषयभूत शुद्धात्मा के आश्रय से मुक्ति की प्राप्ति होती है। अतः साक्षात् प्रयोजनभूत होने से यह नय भूतार्थ है।

अपने प्रतिपादक व्यवहार का निषेध क्यों? हम व्यवहार द्वारा प्रतिपादित विषय में ही अटक कर रह जावेंगे तो निश्चय के विषयभूत अर्थ की प्राप्ति नहीं हो सकेगी, शुद्धात्मा का अनुभव नहीं हो सकेगा; क्योंकि व्यवहारातीत होने के बाद ही निश्चय की प्राप्ति होती है, अतः निश्चय की प्राप्ति के लिए व्यवहार का निषेध भी आवश्यक है।

दूसरे व्यवहारनय का फल संसार ही है, अतः मुक्त होने के लिए भी व्यवहारनय का निषेध किया जाता है।

प्रतिपाद्य-प्रतिपादक संबंध – निश्चय के प्रतिपादन के लिए व्यवहार का प्रयोग अपेक्षित है। यदि व्यवहार का प्रयोग नहीं करेंगे तो वस्तु समझ में नहीं आवेगी। अतः निश्चय प्रतिपाद्य है और व्यवहार प्रतिपादक। जैसे – व्यवहार का काम भेद करके समझाना और संयोग का ज्ञान कराना है, तो वह अभेद अखण्ड वस्तु में भेद करके समझाता है, संयोग का ज्ञान कराता है; पर भेद करके भी वह समझाता तो अभेद-अखण्ड को ही है, संयोग से भी समझाता असंयोगी तत्त्व को ही है; इसीलिए उसे निश्चय का प्रतिपादक कहा जाता है। इसप्रकार निश्चय-व्यवहार में प्रतिपाद्य-प्रतिपादक संबंध है।

निषेध्य-निषेधक संबंध – निश्चय का काम व्यवहार का निषेध करना है। अतः व्यवहारनय निषेध्य है और निश्चयनय निषेधक। जिसप्रकार साबुन को धोए बिना कपड़ा साफ नहीं होता उसीप्रकार व्यवहार के निषेध बिना निश्चय के विषयभूत शुद्धात्मा की प्राप्ति नहीं होती। जब व्यवहार द्वारा निश्चय के परिपूर्ण प्रतिपादन के बाद निश्चय की प्राप्ति हो जाती है तब व्यवहारातीत होने के लिए व्यवहार का निषेध किया जाता है; क्योंकि व्यवहार को छोड़े बिना निश्चय पाया नहीं जा सकता। व्यवहार की सार्थकता निषेध में है? इसप्रकार व्यवहार-निश्चय में निषेध्य-निषेधक संबंध है।

निश्चयनय

विभिन्न शास्त्रों में निश्चयनय के बारे में विभिन्न कथन प्राप्त होते हैं, जिनमें कतिपय निम्न हैं –

१. जो अभेद व अनुपचार से वस्तु का निश्चय करता है, उसे निश्चयनय कहते हैं।[१]
२. सच्चे निरूपण को निश्चय कहते हैं।[२]
३. आत्माश्रित (स्वाश्रित) कथन को निश्चय कहते हैं।[३]
४. जिसका विषय अभिन्न कर्त्ता-कर्मादि है, वह निश्चयनय है।[४]
५. एक ही द्रव्य के भाव को उसरूप ही कहना निश्चयनय है। जैसे – मिट्टी के घड़े को मिट्टी का कहना – निश्चयनय का कथन है।[५]
६. जिस द्रव्य की परिणति हो, उसे उस ही की कहना निश्चयनय है।[६]
७. निश्चयनय स्वद्रव्य को, परद्रव्य को व उनके भावों को व कारण कार्यादिक को, किसी को किसी में नहीं मिलाता है, उनका यथावत् निरूपण करता है।[७]
८. निश्चयनय भूतार्थ है।[८]

उक्त समस्त कथनों पर ध्यान देने पर निम्न निष्कर्ष निकलते हैं –

परिभाषा – जो दो भिन्न-भिन्न वस्तुओं में व्यवहार द्वारा स्थापित

---

१. (अ) द्रव्यस्वभाव प्रकाशकनयचक्र, गाथा-२६४
   (ब) अभेदोनुपचारतया वस्तु निश्चियतिनिश्चयः। आलापपद्धति।
२. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ २४८-२४९
३. समयसार गाथा २७२ की आत्मख्याति टीका।
४. (अ) तत्त्वावनुशासन, आ. नागसेन।
   (ब) अनाचार धर्मामृत, पं. आशाधरजी, अध्याय-१, श्लोक १०२
५. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृ. २४९
६. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृ. २५०
७. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृ. २४९
८. (अ) समयसार, गाथा-११, (ब) पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, श्लोक-५

एकता का खण्डन करता है और एक अखण्ड वस्तु में भेदों का निषेध अखण्डता की स्थापना करता है, उसे निश्चयनय कहते हैं।

कार्य – निश्चयनय का कार्य पर से भेद और निज में अभेद स्थापित करना है तथा कर्त्ता-कर्म के भेद का निषेध कर अभिन्न कर्त्ता-कर्मादि षट्कारक की स्थापना करना भी है।

कथन – निश्चयनय जिस द्रव्य का जो भाव या परिणति हों, उसे उसी द्रव्य की कहता है। प्रत्येक द्रव्य का स्वतंत्र यथावत् कथन करता है। निश्चयनय का कथन स्वाश्रित होता है।

भूतार्थता – स्वाश्रित होने से निश्चयनय के कथन सत्यार्थ हैं, भूतार्थ हैं अथवा समग्र स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाएगा, क्योंकि वस्तु में वो परस्पर विरोधी धर्म युगल निश्चयनय का विषय अभेद-अखण्ड आत्मा है। उसके विषयभूत आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होती है, मुक्ति की प्राप्ति होती है, अतः यह नय भूतार्थ है।

निश्चयनय और व्यवहारनय में अन्तर

निश्चयनय और व्यवहारनय में निम्नानुसार अंतर हैं ह्न

निश्चयनय	व्यवहारनय
१) निश्चयनय यथार्थ निरूपण करता है।	१) व्यवहारनय उपचरित निरूपण करता है।
२) निश्चयनय आत्माश्रित कथन करता है।	२) व्यवहारनय पराश्रित कथन करता है।
३) निश्चयनय असंयोगी कथन करता है।	३) व्यवहारनय संयोगी कथन करता है।
४) निश्चयनय भूतार्थ है।	४) व्यवहारनय अभूतार्थ है।
५) निश्चयनय जिस द्रव्य का जो भाव या परिणति हो, उसे उसी द्रव्य की कहता है।	५) व्यवहारनय निमित्तादि की अपेक्षा अन्य द्रव्य के भाव या परिणति को अन्य द्रव्य की कह देता है।
६) निश्चयनय प्रत्येक द्रव्य का स्वतंत्र कथन करता है।	६) व्यवहारनय अनेक द्रव्यों को, उनके भावों को और कारण-कार्यादिक को मिलाकर कथन करता है।
७) निश्चयनय एक अखण्ड वस्तु में भेदों का निषेध कर अखण्डता की स्थापना करता है।	७) व्यवहारनय एक अखण्ड वस्तु में भेद करता है।

८) निश्चयनय दो भिन्न-भिन्न वस्तुओं में स्थापित एकता का खंडन करता है।	८) व्यवहारनय प्रयोजनवश दो भिन्न-भिन्न वस्तुओं में अभेद स्थापित करता है।
९) निश्चयनय का कार्य स्व से अभेद और पर से भेद करना है।	९) व्यवहारनय का कार्य स्व में भेद और पर से अभेद करना है।
१०) निश्चयनय प्रतिपाद्य है।	१०) व्यवहारनय प्रतिपादक है।
११) निश्चयनय निषेधक है।	११) व्यवहारनय निषेध्य है।
१२) निश्चयनय और व्यवहारनय में प्रतिपाद्य-प्रतिपादक संबंध है।	१२) व्यवहारनय और निश्चयनय में निषेध्य-निषेधक संबंध है।
१३) निश्चयनय को पाने के लिए व्यवहारनय को छोड़ना होगा।	१३) व्यवहारनय के बिना निश्चय समझा नहीं जा सकता।
१४) निश्चयनय को समझने के लिए प्राथमिक भूमिका में व्यवहारनय को अपनाना होगा।	१४) व्यवहारनय को छोड़े बिना निश्चयनय पाया नहीं जा सकता।
१५) निश्चयनय के बिना तत्त्व (शुद्धात्मा के अनुभव) का लोप हो जाएगा।	१५) व्यवहारनय के बिना तीर्थ (उपदेश) का लोप हो जाएगा।
१६) अनुभव की प्रक्रिया में निश्चयनय प्रधान है।	१६) उपदेश की प्रक्रिया में व्यवहारनय प्रधान है।
१७) अनुभव के काल में निश्चयनय का विकल्प छूटता है, पर विषय का आश्रय रहता है।	१७) अनुभव के काल में व्यवहारनय का विकल्प एवं विषय का आश्रय भी छूट जाता है।
१८) निश्चयनय अभिन्न कर्त्ता-कर्म की स्थापना करता है।	१८) व्यवहारनय भिन्न-भिन्न द्रव्यों के बीच कर्त्ता-कर्म संबंध बताता है।

निश्चय-व्यवहार का विरोधी रूप – उक्त प्रकार से हम देखते हैं कि निश्चय-व्यवहार की विषयवस्तु और कथन-शैली में मात्र भेद ही नहीं, अपितु विरोध दिखाई देता है; क्योंकि जिस विषयवस्तु को निश्चयनय अभेद-अखण्ड कहता है, व्यवहार उसी में भेद बताने लगता है और जिन दो वस्तुओं को व्यवहार एक बताता है, निश्चयनय के अनुसार वे कदापि एक नहीं हो सकती हैं। जैसे – व्यवहारनय कहता है कि जीव और देह एक ही है और निश्चयनय कहता है कि जीव और देह कदापि एक नहीं हो सकते।[१]

१. समयसार, गाथा-२७

उक्त उदाहरणों में व्यवहारनय पर से एकत्व स्थापित कर रहा है और निश्चयनय उससे स्पष्ट इंकार कर पर से भेद कर रहा है। अथवा ज्ञानी (आत्मा) के चारित्र, दर्शन, ज्ञान – ये तीन भेद व्यवहार से कहे जाते हैं, निश्चय से ज्ञान भी नहीं है, चारित्र भी नहीं है, दर्शन भी नहीं है; ज्ञानी तो एक शुद्धज्ञायक ही है।[१] – इस उदाहरण में व्यवहारनय स्व में भेद कर रहा है और निश्चयनय उससे इंकार कर स्व में अभेद स्थापित कर रहा है।

इसप्रकार व्यवहार का कार्य निज में भेद और पर से अभेद करके समझाना है और निश्चय का कार्य पर से भेद और स्व से अभेद करना है।

व्यवहारनय दो द्रव्यों में कर्त्ता-कर्म का भेद करता है, उनमें कर्त्ता-कर्म का संबंध बताता है और निश्चयनय अभिन्न षट्कारक के साथ-साथ कर्त्ता-कर्म के भेद का निषेध करता है। यही इनके परस्पर विरोध का रूप है।

निश्चयनय और व्यवहारनय के कथनों में जो परस्पर विरोध दिखाई देता है, वह विषयगत है; क्योंकि अनेकान्तात्मक वस्तु में जो परस्पर विरोधी धर्मयुगल पाए जाते हैं, उनमें से एक धर्म निश्चय का और दूसरा धर्म व्यवहार का विषय बनता है। अतः निश्चय-व्यवहार एक-दूसरे के विरोधी से प्रतीत होते हैं, पर वस्तुतः वे हैं एक-दूसरे के पूरक।

परस्परविरोधी दोनों नयों का कथन आवश्यक क्यों? दो नयों के बिना वस्तु का समग्र स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाएगा, क्योंकि वस्तु में दो परस्पर विरोधी धर्मयुगल पाए जाते हैं। उनमें से एक धर्म का व्यवहार और दूसरे धर्म का निश्चय कथन करता है। यदि दोनों नय एक ही पक्ष का कथन करने लगें तो दूसरा पक्ष उपेक्षित हो जावेगा। अतः वस्तु के सम्पूर्ण प्रकाशन एवं प्रतिपादन के लिए दोनों नय आवश्यक हैं। इसी दृष्टि से दोनों नय एक-दूसरे के पूरक हैं।

१. समयसार, गाथा-२७

क्या परस्पर विरोधी दोनों नयों का ग्रहण एक साथ संभव है? – हाँ, परस्पर विरोधी दोनों नयों का ग्रहण एक साथ संभव है; पर इनके ग्रहण करने का तरीका जुदा है। जैसे – जहाँ जिनवाणी में निश्चय की मुख्यता से कथन हैं, वहाँ उसे 'सत्यार्थ ऐसे ही है' – ऐसा जानना तथा जहाँ व्यवहार की मुख्यता से कथन है, वहाँ उसे 'ऐसे है नहीं, निमित्तादि की उपेक्षा उपचार किया है' – ऐसा जानना। इसप्रकार जानने का नाम ही दोनों नयों का ग्रहण है।[१]

दोनों नयों के कथन को समान जानकर 'ऐसे भी हैं, ऐसे भी हैं' – इसप्रकार दोनों नयों का एक साथ जानना, भ्रमरूप प्रवर्त्तन है, दोनों नयों का ग्रहण करना नहीं है।

क्या दोनों नय समान रूप से उपादेय हैं? – नहीं, दोनों नय समान रूप से उपादेय नहीं हैं। व्यवहार को निश्चय के समान मानना भ्रम है। व्यवहार को निश्चय के समान उपादेय न मान लिया जाए – इससे सावधान करने के लिए ही व्यवहारनय को अभूतार्थ-असत्यार्थ भी कहा गया है। व्यवहारनय अपने प्रयोजन की सिद्धि में समर्थ होने से सभी को निचली दशा में कार्यकारी है, वस्तु का निश्चय करने में उपयोगी है। अतः कथंचित् सत्यार्थ है, उपादेय है; पर प्रयोजन सिद्धि के पश्चात् उसकी उपयोगिता नहीं रहता, अतः कथंचित् असत्यार्थ है, हेय है।

व्यवहारनय को असत्यार्थ कहने से कोई व्यवहार के विषय की सत्ता का भी अभाव न मान ले – इस दृष्टि से व्यवहार को भी कथंचित् सत्यार्थ कहा गया है।

निश्चयनय उपादेय है, क्योंकि अनुभूति की प्रक्रिया में निश्चयनय प्रधान होता है। उसके विषयभूत आत्मा के आश्रय से मुक्ति की प्राप्ति होती है, इसलिए इसे भूतार्थ, सत्यार्थ कहा है।

संक्षेप में कहें तो जिसके आश्रय से मुक्ति हो, वह भूतार्थ और जिसके आश्रय से मुक्ति न हो वह अभूतार्थ है।

१. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृ. २५१

अभूतार्थ होने के कारण ही व्यवहारनय निषेध्य है। व्यवहारनय के निषेध के बाद निश्चयनय का पक्ष (विकल्प) भी विलय हो जाता है; क्योंकि नयों का प्रयोग विकल्पात्मक भूमिका में तत्त्वों का निर्णय करने के लिए ही होता है, आत्माराधना के समय नहीं। अनुभव के काल में तो नय संबंधी सभी विकल्प विलय हो जाते हैं।

इसप्रकार हम देखते हैं कि जब तक नय विकल्प चलता रहता है, तब तक आत्मा परोक्ष ही रहता है, वह प्रत्यक्षानुभूति का विषय नहीं बन पाता; क्योंकि प्रत्यक्षानुभूति नय पक्षातीत होती है।

यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि चूँकि निश्चयनय के तो मात्र पक्ष या विकल्प को छोड़ना है, उसके विषयभूत अर्थ को तो ग्रहण करना है और व्यवहारनय का मात्र पक्ष ही नहीं, विषयभूत अर्थ भी छोड़ने योग्य है। अतः दोनों नय समानरूप से उपादेय नहीं है।

विभिन्न नाम – निश्चयनय को भूतार्थनय के अतिरिक्त शुद्धनय, परमशुद्धनय, परमार्थनय भी कहा जाता है।

चूँकि सामान्य शुद्धभावरूप होता है, परमभावरूप होता है, परम अर्थ (परमार्थ) है, अतः इन्हें विषय बनाने वाले निश्चयनय को शुद्धनय, परमशुद्धनय, परमार्थनय भी कहा जाता है।

व्यवहारनय : भेद–प्रभेद

व्यवहारनय सामान्य–विशेषात्मक वस्तु के विशेष अंश को विषय बनाता है। विशेष अनेक प्रकार के होते हैं, अतः उनको विषय बनाने वाला व्यवहारनय अनेक प्रकार का हो सकता है। किन्तु व्यवहारनय 'एक अखण्ड वस्तु में भेद करके तथा दो भिन्न वस्तुओं में अभेद करके वस्तुस्वरूप को स्पष्ट करता है' – उसकी इस विशेषता को ध्यान में रखकर उसके दो भेद किये गये हैं[१] –

१. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ–१११

१. असद्भूत व्यवहारनय २. सद्भूत व्यवहारनय

असद्भूत और सद्भूत – दोनों व्यवहारनय भी दो–दो प्रकार के होते हैं –

(i) उपचरित असद्भूतव्यवहारनय।

(ii) अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय।

(iii) उपचरित सद्भूतव्यवहारनय।

(iv) अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय।

इसप्रकार व्यवहारनय चार प्रकार का हो गया। इनमें से उपचरित सद्भूतव्यवहारनय को अशुद्ध सद्भूतव्यवहारनय और अनुपचरित सद्भूतव्यवहारनय को शुद्ध सद्भूतव्यवहारनय भी कहा जाता है।[१]

व्यवहारनय के चारों भेदों को निम्न चार्ट द्वारा समझा जा सकता है।

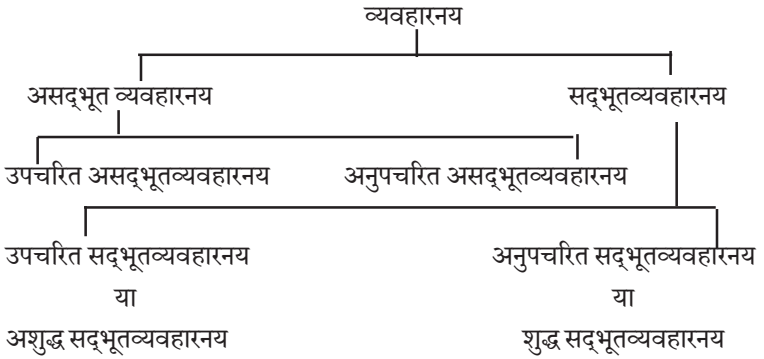

उक्त भेदों में हम देखते हैं कि 'उपचार' शब्द का प्रयोग असद्भूत व्यवहारनय के साथ–साथ सद्भूतव्यवहारनय के साथ भी किया गया है। इसी के आधार पर सद्भूतव्यवहारनय के उपचरितसद्भूत व्यवहारनय और अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय – ऐसे दो भेद किए गए हैं। तथापि वास्तविक उपचार तो असद्भूत व्यवहारनय में ही होता है, क्योंकि इसमें गुणभेदादि भेद उपचरित नहीं, वास्तविक हैं।[२]

१. परमभावप्रकाशक नयचक्र पृष्ठ–११३

२. वही, पृष्ठ–१४३,

सद्भूतव्यवहारनय के अनुपचरित और उपचरित भेदों के स्थान पर जो शुद्ध और अशुद्ध नाम प्राप्त होते हैं, उनसे सद्भूत व्यवहारनय को उपचरित कहने में संभवित संकोच स्पष्ट हो जाता है।[१]

सद्भूत व्यवहारनय भेद का उत्पादक है और असद्भूत व्यवहारनय उपचार का उत्पादक है। उपचार में भी उपचार का उत्पादक होने से उपचरित असद्भूतव्यवहारनय असद्भूत व्यवहारनय का ही एक भेद है। जिस असद्भूत व्यवहारनय में मात्र उपचार ही प्रवर्तित होता है; उपचार में भी उपचार नहीं, उस असद्भूत व्यवहारनय को उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से पृथक बताने के लिए अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय नाम से भी कहा जाता है।[२]

भेद-प्रभेदों की सार्थकता – विश्व की संरचना और स्वचालित पूर्ण व्यवस्थित-व्यवस्था समझाने के लिए व्यवहारनय के उक्त भेद-प्रभेद सार्थक भी हैं, आवश्यक भी हैं, क्योंकि विश्व अनन्तानन्त द्रव्यों का समूह है। अनन्तानन्त द्रव्य उसकी इकाइयाँ हैं। प्रत्येक इकाई अर्थात् प्रत्येक द्रव्य सर्वप्रभुता सम्पन्न, अपने में परिपूर्ण है, अखण्ड है, पूर्ण स्वतंत्र हैं।[३]

यद्यपि प्रत्येक द्रव्य में अनेक प्रदेश हो सकते हैं, पर वह उनसे खण्डित नहीं होता। इसीप्रकार प्रत्येक द्रव्य में अनन्त शक्तियाँ और उनकी अनन्तानन्त अवस्थाएँ भी होती हैं, पर उन शक्तियों और अवस्थाओं के कारण द्रव्य की अखण्डता खण्डित नहीं होती, प्रभु सम्पन्नता प्रभावित नहीं होती; क्योंकि प्रत्येक द्रव्य की अखण्डता और प्रभु सम्पन्नता तभी प्रभावित होती है कि जब कोई अन्य द्रव्य उसकी

१. परमभाव प्रकाशक नयचक्र पृष्ठ-१४३
२. वही, पृष्ठ-१४४
३. वही, पृष्ठ-११८

सीमा में प्रवेश करे या उसकी अवस्थाओं में हस्तक्षेप करे। पर ऐसा तो होता नहीं है, क्योंकि जैसा कि ऊपर कह आए हैं कि प्रत्येक द्रव्य अपने में परिपूर्ण, अखण्ड और पूर्ण स्वतंत्र हैं।[१]

प्रत्येक द्रव्य अपनी अखण्डता और एकता कायम रखकर समझने-समझाने आदि की दृष्टि से गुण-गुणी, प्रदेश-प्रदेशवान, पर्याय-पर्यायवान आदि से भेदा जाता है।[२]

समझने-समझाने की दृष्टि से एकद्रव्य की मर्याया के भीतर किए गए गुणभेदादि भेद अतद्भाव[३] रूप होते हैं और दो द्रव्यों के बीच जो विभाजन रेखा होती है, वह अत्यन्ताभावस्वरूप होती है, क्योंकि उन दोनों के सुख-दुःख, लाभ-हानि सम्मिलित नहीं होते। किन्तु एक द्रव्य के प्रदेशों, गुणों और पर्यायों के सुख-दुःख, लाभ-हानि सम्मिलित होते हैं; यही कारण है कि द्रव्य की मर्यादा के भीतर किए गए भेद वास्तविक नहीं हैं; पर हैं अवश्य।[४]

सद्भूत व्यवहारनय अखण्ड एक द्रव्य में भेद डालकर समझने-समझाने का कार्य करता है और असद्भूतव्यवहारनय दो भिन्न द्रव्यों के बीच संबंध बताने का कार्य करता है।

अखण्ड द्रव्य में भेद शुद्ध गुण-गुणी या अशुद्ध गुण-गुणी के आधार पर किया जाता है। शुद्ध गुणगुणी को विषय बनाने वाले नय को शुद्ध सद्भूतव्यवहारनय कहते हैं।

अशुद्ध गुणगुणी को विषय बताने वाले नय को अशुद्धसद्भूत-व्यवहारनय कहते हैं। दो द्रव्यों के बीच जो संबंध बताया जाता है वह भी दो प्रकार का होता है – संश्लेष सहित और संश्लेष रहित।[५]

१. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ-११९ २. वही, पृष्ठ-११९
३. स्वरूप अपेक्षा से जो द्रव्य हैं, वह गुण नहीं है और जो गुण है, वह द्रव्य नहीं है – यह अतद्भाव है। सर्वथा अभाव अतद्भाव नहीं है।
४. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ-१२० ३. वही, पृष्ठ-१२२

संश्लेष सहित संबंध को विषय बनाने वाला नय अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय है। संश्लेष रहित संबंध को विषय बनाने वाला नय उपचरित असद्भूत व्यवहारनय है।

इसप्रकार व्यवहारनय एक द्रव्य की आन्तरिक संरचना के स्पष्टीकरण के लिए अभेद में भेद करता है, पर द्रव्य की आन्तरिक व्यवस्था में जितना बल अभेद पर दिया जाता है, उतना बल भेद पर नहीं। इसलिए अभेदग्राही निश्चयनय को भूतार्थ और सत्यार्थ कहकर उपादेय बताया जाता है और भेदग्राही व्यवहारनय को अभूतार्थ और असत्यार्थ कहकर हेय कहा जाता है; क्योंकि अभेदग्राही निश्चयनय द्रव्य की अखण्डता का पोषक होने से एकता को मजबूत करता है, अनेकता के विकल्पों का शमन करता है और आत्मानुभूति की प्राप्ति का साक्षात् हेतु करता है।[१]

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि विश्व की व्यवस्था को समझने-समझाने के लिए व्यवहारनय के भेद-प्रभेद आवश्यक है, सार्थक है।

उपनय – व्यवहार उपनय से उपजनित होता है। व्यवहारनय भेद का उत्पादक होने से, असद्भूत व्यवहारनय उपचार का उत्पादक होने से और उपचरित असद्भूत व्यवहारनय उपचार में भी उपचार का उत्पादक होने से उपनयजनित है।[२]

एक प्रकार से व्यवहारनय ही उपनय हैं; क्योंकि उपनयों में जो भेद गिनाए गए हैं, वे सब एक प्रकार से व्यवहारनय के ही भेद-प्रभेद हैं। जैसा कि निम्न चार्ट से स्पष्ट है[३] –

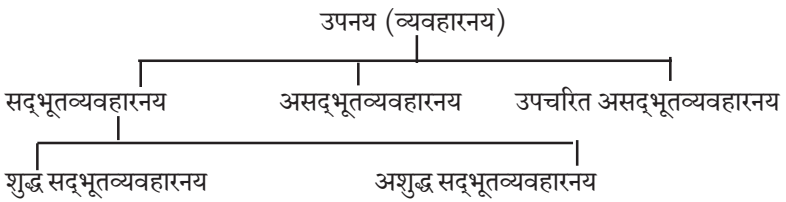

१. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ-१२०
२. वही, पृष्ठ-१४४ ३. वही, पृष्ठ-१४४

प्रयोजन – व्यवहार में अटकने, भटकने और उलझने से बचने के लिए व्यवहारनय का स्वरूप जानना अनिवार्य है। यही इसका प्रयोजन है।

हेयोपादेयता – व्यवहारनय ज्ञेयरूप में उपादेय है और श्रद्धेय और ध्येय रूप में हेय है अर्थात् व्यवहारनय जानने के लिए उपादेय है और श्रद्धा का और ध्यान का विषय न होने से हेय है।

(१) असद्भूतव्यवहारनय

स्वरूप और विषय वस्तु – जो नय संबंधों के आधार पर भिन्न-भिन्न द्रव्यों में अभेदोपचार करके वस्तुस्वरूप को स्पष्ट करता है, उसे असद्भूतव्यवहारनय कहते हैं।

इसका विषय असीमित है; क्योंकि इसका विषय विभिन्न द्रव्यों के बीच विभिन्न संबंधों के आधार पर एकत्व का उपचार करना है। एक तो द्रव्य अनन्तानन्त हैं और उनमें जिन संबंधों के आधार पर एकत्व या कर्तृत्वादि का उपचार किया जाता है, वे संबंध भी अनेक प्रकार के होते हैं। जैसे कि वे संबंध एक ही जाति के हैं या भिन्न-भिन्न जाति के? जो संबंध स्थापित किया जाता है, वह निकटवर्ती (संश्लेष सहित) है या दूरवर्ती (संश्लेष रहित)? ज्ञाता ज्ञेय है या स्वस्वामी? आदि अनेक विकल्प खड़े होते हैं।[१]

इन सभी बातों को ध्यान में रखकर द्रव्य, गुण, पर्याय के आधार पर इन उपचारों को निम्न नौ भागों में विभाजित किया जाता है।[२]

एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का उपचार, एक पर्याय में दूसरी पर्याय का उपचार, एक गुण में दूसरे गुण का उपचार, द्रव्य में गुण का उपचार, द्रव्य में पर्याय का उपचार, गुण में द्रव्य का उपचार, गुण में पर्याय का उपचार; पर्याय में द्रव्य का उपचार और पर्याय में गुण का उपचार।[३]

१. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ-१४२
२. वही, पृष्ठ-१४२ ३. वही, पृष्ठ-११२-११३

सजाति, विजाति और उभय के भेद से द्रव्यों का वर्गीकरण भी तीन प्रकार से किया जाता है। उक्त तीनों द्रव्यों में विभिन्न संबंधों के आधार पर उक्त नौ प्रकार का उपचार करना ही असद्भूतव्यवहारनय का विषय है।[१]

वस्तुतः भिन्न द्रव्यों में अभेद वस्तुगत नहीं है[२], किन्तु यह नय संबंधों के आधार पर 'पर' से एकत्व जोड़ता है। जैसे – शरीर को अपना मानना, माता-पिता, मकानादि को अपना कहना – यह मेरे माता-पिता हैं, यह मेरा मकान है आदि। – इसप्रकार आत्मा का पर से एकत्व इस नय का विषय है।

संक्षेप में कहें तो यह नय भिन्न-भिन्न वस्तुओं में अभेद व्यवहार कर, दो द्रव्यों के बीच संबंध बताता है। आत्मा के साथ परद्रव्यों का संबंध दो प्रकार से होता है – संश्लिष्ट संबंध और असंश्लिष्ट संबंध।

जिन दो पदार्थों में सीधा संबंध पाया जाता है, उन्हें निकटवर्ती या संश्लिष्ट कहते हैं। संश्लिष्ट पदार्थों में मात्र उपचार करने से काम चल जाता है। जैसे – ज्ञान और ज्ञेय के बीच सीधा संबंध होने से ज्ञाता-ज्ञेय संबंध को संश्लेष संबंध अर्थात् निकट का संबंध माना गया है, जबकि उनमें अत्यधिक दूरी पाई जा सकती है;[३] क्योंकि सर्वज्ञ भगवान का ज्ञेय तो अलोकाकाश भी होता है।[४]

जब दो पदार्थ किसी तीसरे माध्यम से (इनडायरेक्ट) संबंधित होते हैं, तब उन्हें दूरवर्ती या असंश्लिष्ट संबंध कहा जाता है। इन असंश्लिष्ट संयोगी पदार्थों में उपचार में भी उपचार करना होता है। जैसे – स्त्री-पुत्रादि और मकानादि के साथ जो आत्मा का संबंध है, वह देह के माध्यम से होता है, अतः वह उपचार में उपचार है।[५]

१. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ-१४३ २. वही, पृष्ठ-१११
३. यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि एकक्षेत्रवगाही संबंध संश्लिष्ट संबंध का पर्यायवाची नहीं है। यहाँ एकक्षेत्रावगाह संबंध होने पर भी संश्लेष संबंध है।
४. वही, पृष्ठ-१४९-१५० ५. वही, पृष्ठ-१५०

इसप्रकार यह नय आत्मा का परपदार्थों के साथ कैसा संबंध है? – यह बताता है। प्रथमानुयोग के सभी कथन इस नय के अन्तर्गत आते हैं। जैसे – तीर्थंकर आदिनाथ की पत्नी आदि का उल्लेख, उनकी पाँच सौ धनुष की काया का कथन इसी नय के विषय हैं।

नाम की सार्थकता – दो द्रव्य कभी भी अपृथक् (एक) नहीं हो सकते। संयोगादि देखकर उनके बीच जो अपृथकता (एकता) बताई जाती है, वह आरोपित होती है, वस्तुतः नहीं। अतः भिन्न-भिन्न वस्तुओं में एकतारूप असत्य आरोप करने के कारण यह नय 'असद्भूत' कहलाता है। भिन्न द्रव्यों में संबंध जोड़ने के कारण 'व्यवहार' है और अंश का कथन करने के कारण 'नय' है इसप्रकार इसका 'असद्भूत-व्यवहारनय' नाम सार्थक है।[१]

प्रयोजन – दो भिन्न द्रव्यों के बीच संबंध बताने वाला यह नय दुनिया की मान्यता का प्रतिनिधित्व करने वाला है। यह नय लौकिक वचन व्यवहार के लिए उपयोगी है। जैसे – स्वघर-परघर, स्वस्त्री-परस्त्री का भेद मात्र लौकिक ही नहीं है; अपितु इसका धार्मिक आधार भी है, नैतिक आधार भी है। अतः धार्मिक और नैतिक जीवन के लिए परपदार्थों में भी अपने-पराये का भेद डालना इस नय का प्रयोजन है। साथ ही साथ आत्मा का परपदार्थों के साथ किस प्रकार का संबंध हो सकता है? यह बताकर भेदविज्ञान की सिद्धि का मार्ग प्रशस्त करना भी इस नय का प्रयोजन है।[२]

हेयोपादेयता – इस नय का विषय जानने के लिए एवं लौकिक वचन व्यवहार के लिए उपयोगी होने से उपादेय है, पर उपचार के सहारे आत्मा की विभक्तता को भंजित करने के कारण हेय है।[३] अर्थात् आत्मा की पर से एकता स्थापित करने के कारण हैय हैं, क्योंकि पर से एकता दुःख का कारण है।

१. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ-११२
२. वही, पृष्ठ-१३८ ३. वही, पृष्ठ-१३०

भेद – संबंधों की निकटता और दूरी के आधार पर यह नय दो प्रकार का होता है –

(i) उपचरितअसद्भूतव्यवहारनय।

(ii) अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय।

(i) उपचरितअसद्भूतव्यवहारनय

स्वरूप और विषयवस्तु – जो नय भिन्न वस्तुओं के संश्लेष रहित संबंध को विषय बनाता है, उसे उपचरित असद्भूतव्यवहारनय कहते हैं।[१] जैसे – कुम्हार घड़ा बनाता है।

यह नय उपचार में भी उपचार करता है, क्योंकि असद्भूतव्यवहार में उपचार है।[२] यह नय शरीरादि की अपेक्षा जो दूरवर्ती हैं – ऐसे मकानादि के संयोगों को अपना विषय बनाता है अथवा जिनका संबंध दूर का होता है अर्थात् जो संबंधी के संबंधी होने से परस्पर संबंधित होते हैं, उनको यह नय अपना विषय बनाता है। जैसे – शरीर तो आत्मा से सीधा संबंधित है; पर माता-पिता, स्त्री-पुत्रादि, मकान आदि शरीर से संबंधित है। अतः यह इस नय के विषय बनते हैं, क्योंकि यह सभी कथन उपचार में उपचार करते हैं।

यह उपचार में उपचार सत्य, असत्य और सत्यासत्य पदार्थों में तथा स्वजातीय, विजातीय और स्वजाति विजातीय पदार्थों में किया जाता है। जैसे – देश का स्वामी कहता है कि – 'यह देश मेरा है' – यह सत्य उपचरित असद्भूतव्यवहारनय है। देश में स्थित व्यक्ति कहता है कि 'देश मेरा है। – यह असत्य उपचरित असद्भूतव्यवहारनय है। और व्यापारी अर्थ का व्यापार करते हुए कहता है कि – 'धन मेरा है' – यह सत्यासत्य उपचरित असद्भूत व्यवहारनय है।[३]

१. 'संश्लेष रहित वस्तुओं के संबंध को विषय करने वाला उपचरित असद्भूतव्यवहारनय है। जैसे – देवदत्त का धन है।' आलापपद्धति, पृष्ठ-२२८

२. 'असद्भूत व्यवहार ही उपचार है और उपचार में भी जो उपचार करता है, वह उपचरित असद्भूतव्यवहारनय है।' आलापपद्धति, पृष्ठ-२२७

३. परमभाव प्रकाशक नयचक्र, डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, पृष्ठ-१४७

माँ-पिता, स्त्री-पुत्रादि, मकानादि एवं नगरादि को अपना कहने का व्यवहार इसी नय के आधार पर होता है, इसीलिए लौकिक मर्यादाएँ जैसे स्वस्त्री-परस्त्री, स्वग्रह-परिग्रह, स्वदेश-परदेश, जिनमन्दिर, शिवमन्दिर आदि के भेद कथन इसी नय के कथन हैं।

इन्हीं कथनों के आधार पर हम कहते हैं कि – यह मकान देवदत्त का है, कुम्हार ने घड़ा बनाया है, अज्ञानी पंचेन्द्रियों के विषयों को भोगता है।[१] ज्ञानी मुनिराज उनका त्याग करते हैं।[२] तीर्थंकर भगवान समवशरण में विराजमान हैं – आदि तीर्थंकरों की बाह्य विभूति के सभी कथन इसी नय के कथन हैं। तीर्थंकरों के माता-पिता, स्त्री-पुत्रादि का व्यवहार भी इसी नय से होता है।

उक्त सभी कथनों का भी आधार है। ये कथन सर्वथा असत्य नहीं है। लौकिक दृष्टि से देवदत्त मकान का मालिक है ही और कुम्हार का योग और उपयोग घड़ा बनाने में निमित्त हुआ ही है। भगवान के समवशरण में उपस्थित होने की बात को धार्मिक जगत में भी मान्यता प्राप्त है, क्योंकि वहाँ उनकी उपस्थिति होती ही है।

इसीप्रकार अन्य सभी कथन भी प्रथमानुयोग में व लौकिक-व्यवहार में प्रचलित हैं ही।

कर्त्ता-भोक्ता – इस नय से आत्मा पुण्य-पाप के उदय में मिलने वाले संयोगों का कर्त्ता-भोक्ता है अथवा जीव पंचेन्द्रियों के इष्टानिष्ट विषयों से उत्पन्न सुख-दुःख का भोक्ता है।[३] जैसे – जीव घट, पट, रथ आदि का कर्त्ता है।[४]

नाम की सार्थकता – दो द्रव्यों की एकता वस्तुतः न होकर आरोपित होती है, अतः 'असद्भूत' है, उपचार में उपचार करने के कारण

१. बृहद्द्रव्यसंग्रह, गाथा ९ की संस्कृत व्याख्या

२. वही, गाथा ४५ की संस्कृत व्याख्या। ३. वही, गाथा ९ की संस्कृत व्याख्या

४. नियमसार गाथा १८ की तात्पर्यवृत्ति टीका।

'उपचरित' है और भिन्न द्रव्यों में संबंध जोड़ने के कारण 'व्यवहार' है तथा अंश का कथन करने के कारण 'नय' है; अतः इसका उपचरित असद्भूत व्यवहारनय नाम सार्थक है।

प्रयोजन – स्वधन-परधन, स्वस्त्री-परस्त्री में भेद डालने वाला यह नय आदमी को पशु नहीं बनने देता। परपदार्थों में अपने-पराये का भेद डालने वाले इस नय के बिना धार्मिक व नैतिक जीवन संभव नहीं। धार्मिक व नैतिक जीवन बिना अध्यात्म की साधना संभव नहीं। अतः लौकिक मर्यादायें बताकर सदाचार एवं भेदविज्ञान की सिद्धि कराना इस नय का प्रयोजन है।

हेयोपादेयता – सदाचार की सीमा का प्रतिपादक होने से यह नय कथंचित् उपादेय है तथा परपदार्थों में की गई एकत्वबुद्धि-ममत्वबुद्धि दुःख देने वाली होने से यह नय कथंचित् हेय है।

(ii) अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय

स्वरूप और विषयवस्तु – जो नय भिन्न वस्तुओं के संश्लेष सहित संबंध को विषय बनाता है, उसे अनुपचरित, असद्भूत व्यवहारनय कहते हैं। जैसे – जीव का शरीर है।[१]

संयोगी परपदार्थों में जो अत्यन्त समीप हैं अर्थात् जिनका आत्मा के साथ संश्लिष्ट संबंध है, एकक्षेत्रावगाह संबंध है[२] – ऐसे शरीरादि का संयोग इस नय का विषय बनता है। यह नय देह को ही अपना कहने वाला है, आत्मा को देह से अभिन्न कहने वाला है।[३] क्योंकि शरीर का आत्मा से सीधा संबंध है, निकट का संबंध है, एकक्षेत्रावगाही संबंध है, संश्लिष्ट

१. आलापपद्धति, पृष्ठ-२२८

२. यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि मात्र एकक्षेत्रवगाही संबंध ही संश्लिष्ट संबंध नहीं है, अपितु सीधा संबंध संश्लिष्ट संबंध है। जैसे – ज्ञान-ज्ञेय के बीच एकक्षेत्रावगाही संबंध न होने पर यदि संश्लिष्ट संबंध है।

३. परमात्मप्रकाश, अध्याय-१, गाथा १४ की संस्कृत टीका।

संबंध है। अतः शरीर को आत्मा कहना, शरीर और आत्मा को एक कहना तथा शरीर में एकत्व-ममत्व स्थापित करना इस नय का विषय है।

दशप्राणों में जीव सो जीव[१], देहवाला जीव, मूर्तिक जीव, द्रव्यकर्मों व शरीरादि नौकर्मों का कर्त्ता जीव – ये सभी कथन इस नय के हैं। तीर्थंकर आदिनाथ पाँच सौ धनुष की कंचनवर्णी काया वाले थे आदि देह के गुणों के आधार पर की गई स्तुति एवं वे सर्वज्ञ[२] थे आदि कथन इसी नय के हैं। त्रस-स्थावर जीवों के मारने पर हिंसा का होना और उनके त्याग रूप अहिंसाणुव्रत, महाव्रत भी इसी नय के कथन हैं; क्योंकि इनमें मात्र उपचार किया गया है।

यह उपचार नौ प्रकार से किया जा सकता है – द्रव्य में द्रव्य का, गुण में गुण का, पर्याय में पर्याय का, द्रव्य में गुण और पर्याय का, गुण में द्रव्य और पर्याय का, पर्याय में द्रव्य और गुण का। जैसे – पौद्गलिक काय में जो एकेन्द्रिय आदि के शरीर बनते हैं, इन्हें जो जीव कहता है, वह विजातीय द्रव्य में विजातीय द्रव्य का आरोपण करने वाला अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय है।[३]

रात्रि में भोजन नहीं करना, माँस-मदिरा का सेवन नहीं करना, आलू आदि जमींकंद नहीं खाना; क्योंकि इनमें अनन्तजीव हैं – इनको खाने से अनन्त जीवों की मृत्यु हो जाएगी – ये भव इसी नय के कथन हैं।

त्रस स्थावरजीवों की हिंसा के त्यागरूप अणुव्रतादि ग्रहस्थधर्म एवं महाव्रतादि मुनिधर्म के प्रतिपादक चरणानुयोग का मूल-आधार यह नय ही है।

१. पंचास्तिकाय संग्रह, गाथा २७ की तात्पर्यवृत्ति टीका।

२. ज्ञान व ज्ञेय में सीधा संबंध होने के कारण 'तीर्थंकर सर्वज्ञ होते हैं' – आदि कथन इस नय के अन्तर्गत आते हैं।

२. इनका विस्तृत उदाहरण सहित वर्णन परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ-१४६-१४७ में पढ़ें।

कर्त्ता-भोक्ता – इस नय से ही जीव द्रव्यकर्मों का कर्त्ता और उसके फलस्वरूप सुख-दुःख का भोक्ता है।[१] मनुष्यादि पर्यायों का कर्त्ता-भोक्ता भी इसी नय से कहा जाता है।

नाम की सार्थकता – शरीरादि संश्लिष्ट संबंध वाले परपदार्थों में एकता आरोपित करने के कारण 'असद्भूत' है, मात्र उपचार करने के कारण 'अनुपचरित' हैं, भिन्न द्रव्य में एकत्व-ममत्व का संबंध जोड़ने के कारण 'व्यवहार' है और अंश का कथन करने के कारण 'नय' है। अतः इसका उपचरित असद्भूतव्यवहारनय सार्थक है।

प्रयोजन – अहिंसात्मक आचरण और भेदविज्ञान की सिद्धि करना इस नय का प्रयोजन है।

हेयोपादेयता – यह नय अहिंसात्मक आचरण का प्रतिपादन करने वाला है, अतः कथंचित् उपादेय है तथा शरीर में की गई अहंबुद्धि, ममत्व बुद्धि, कर्त्ताबुद्धि और भोक्ताबुद्धि ही दुःखों का कारण है, अतः यह नय कथंचित् हेय है।

(२) सद्भूतव्यवहारनय

स्वरूप और विषयवस्तु – जो गुणों, कर्मों, स्वभाव और पर्यायों के आधार पर भेद करके अखण्ड वस्तु स्वरूप को स्पष्ट करता है, उसे सद्भूत व्यवहारनय कहते हैं। यह नय अपने द्रव्य-गुण-पर्याय के भीतर की बात करता है।[२] गुण गुणी में, पर्याय-पर्यायी में, स्वभाव-स्वभाववान में और कारक-कारकवान में – जो वस्तुतः अभिन्न है, उनमें भेद करना सद्भूतव्यवहानय का विषय है।[३] इसप्रकार यह नय एक अखण्ड वस्तु में भेद डालकर एक को अनेकरूप देखने वाला है, अभिन्न वस्तु में भेदव्यवहार करने वाला

१. नियमसार गाथा १८ की तात्पर्यवृत्ति टीका।
२. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ-१११
३. वही, पृष्ठ-११२

है। जैसे – जीव को ज्ञान दर्शन वाला कहना। वस्तुतः तो ज्ञान, दर्शन-जीव से अभिन्न ही हैं, पर यह नय उनमें भेद करता है। अतः यह नय भेद का उत्पादक है।

वस्तुतः तो वस्तु में भेद हैं ही नहीं, उनमें भेद किए नहीं जा सकते; पर भेद करके जान सकते हैं, समझ सकते हैं; अतः यह नय अपने में भेद करके समझाता है।

एक द्रव्य की मर्यादा के भीतर किए गए गुणभेदादि भेद दो द्रव्यों के बीच होने वाले भेद के समान अभावरूप न होकर अतद्भावरूप होते हैं। अतद्भाव अभावरूप नहीं होता है। स्वरूप अपेक्षा से जो द्रव्य है, वह गुण नहीं है और जो गुण है, वह द्रव्य नहीं है – यह अतद्भाव है। अथवा अतद्भाव अन्यत्व है। एक द्रव्य की मर्यादा के भीतर गुण का गुणी में अभाव या गुणी का गुण में अभाव अथवा एक गुण का दूसरे गुण में अभाव, इत्यादि रूप जो अभाव होता है, उसे अन्यत्व कहते हैं अथवा अन्य-अन्य होना अन्यत्व है। एवं द्रव्य के दो गुण या गुण-गुणी आदि अन्य-अन्य होते हैं; क्योंकि एक द्रव्यरूप होने से वे अपृथक् ही हैं, पृथक्-पृथक् नहीं।[१] जैसे वस्त्र और शुभ्रता में अन्यत्व है, क्योंकि उनके प्रदेश भिन्न-भिन्न नहीं हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि सद्भूतव्यवहारनय अतद्भाव के आधार पर द्रव्य की एकता को खण्डित करता हुआ अपने में ही अन्यत्व को विषय बनाता है।

नाम की सार्थकता – वस्तु के गुण पर्याय उस वस्तु में ही विद्यमान होने के कारण 'सद्भूत' कहलाते हैं, अखण्ड वस्तु में गुण-पर्याय आदि के आधार पर भेद उत्पन्न करने के कारण उसे 'व्यवहार' कहते हैं और भेदाभेद वस्तु के भेदांश को ग्रहण करने वाला होने से 'नय' कहते हैं? अतः इसका सद्भूतव्यवहारनय नाम सार्थक है।

१. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ-१२८, १२९, १३०

प्रयोजन – यह नय अखण्ड द्रव्य के बीच भेद डालकर समझने-समझाने का कार्य करता है तथा भेद और विकार का ज्ञान भी कराता है।

हेयोपादेयता – समझने-समझाने में उपयोगी होने के कारण उपादेय है और द्रव्य की एकता को खण्डित करने के कारण हेय है।

भेद – शुद्धता और अशुद्धता को विषय बनाने के आधार पर यह नय भी दो प्रकार का होता है –

(i) उपचरित सद्भूतव्यवहारनय। (अशुद्ध सद्भूतव्यवहारनय)

(ii) अनुपचरित सद्भूतव्यवहारनय। (शुद्ध सद्भूतव्यवहारनय)

(i) उपचरित सद्भूतव्यवहारनय

स्वरूप और विषयवस्तु – अखण्ड द्रव्य में अशुद्ध गुण-गुणी, पर्याय-पर्यायी के आधार पर भेद को विषय बनाने वाले नय को उपचरित सद्भूतव्यवहारनय कहते हैं।[१] अथवा सोपाधि गुण-गुणी में भेद को विषय करने वाला नय को उपचरितसद्भूतव्यवहार कहते हैं।[२] जैसे – जीव के मतिज्ञानादि गुण हैं। मतिज्ञानादि विभाव गुणों का आधार होने के कारण अशुद्ध जीव कहा जाता है।[३]

यह अल्पविकसित और विकारी पर्यायों को आत्मा की कहता है, इसलिए अशुद्ध गुणों का आधारभूत होने से इसे अशुद्धसद्भूत-व्यवहारनय[४] भी कहते हैं। जैसे – मैं राग-द्वेषादि वाला हूँ।

संक्षेप में कह सकते हैं कि यह नय हमारे अंदर वर्तमान में विद्यमान रागादि विकारों और मतिज्ञानादि अपूर्ण पर्यायों का ज्ञान कराता है। इसप्रकार यह नय एक द्रव्य में भेद डालता है, अपने में भेद करता है।

१. आलापपद्धति, पृष्ठ-२१७ २. वही, पृष्ठ-२२८

३. (अ) नियमसार, गाथा ९ की तात्पर्यवृत्ति टीका।
(ब) प्रवचनसार, जयसेनाचार्यकृत तात्पर्यवृत्ति का परिशिष्ट

४. छद्मस्थ जीव के अपरिपूर्ण ज्ञान-दर्शन की अपेक्षा से 'अशुद्धसद्भूत' शब्द से वाक्य उपचरित सद्भूतव्यवहारनय है। वृहद्द्रव्य संग्रह, गाथा ६ की संस्कृत व्याख्या।

कर्त्ता-भोक्तापन – आत्मा मोह-राग-द्वेषादि विकारी भावों का कर्त्ता व उनके फल का भोक्ता है।

नाम की सार्थकता – मोह-राग-द्वेषादि भाव हमारी आत्मा में ही उत्पन्न होने के कारण 'सद्भूत' हैं तथा आत्मा को दुःख देने वाले हैं, दूर के हैं, अविकसित और विकारी पर्यायें हैं, अतः 'उपचरित' हैं। दुनिया में उन्हें अपना कहा जाता है, इसलिए 'व्यवहार' है। अंश का कथन करने के कारण 'नय' हैं अथः इसका उपचरित सद्भूतव्यवहारनय नाम सार्थक है।

प्रयोजन – वर्तमान पर्याय की पामरता का ज्ञान कराकर उससे मुक्त होने की प्रेरणा देना ही इस नय का प्रयोजन है।

हेयोपादेयता – अपनी भूलों का प्रतिपादन करने वाला यह नय हमें सिखाता है कि हम अपनी भूलों को स्वीकार कर उसकी पुनरावृत्ति न करें तथा यह नय वर्तमान पर्याय की पामरता का ज्ञान कराकर उससे मुक्त होने की प्रेरणा भी देता है; अतः यह नय कथंचित् उपादेय है।

मोहादि परिणाम आत्मा की सुख-शांति का घात करने वाले हैं, इसलिए इन्हें आत्मा नहीं माना जा सकता, अतः इन्हें आत्मा कहने वाला नय कथंचित् हेय है।

(ii) अनुपचरित सद्भूतव्यवहारनय

स्वरूप और विषयवस्तु – अखण्ड द्रव्य में शुद्ध गुण-गुणी, पर्याय-पर्यायी के आधार पर भेद को विषय करने वाले नय को अनुपचरित सद्भूतव्यवहारनय कहते हैं।[१] जीव केवलज्ञान-दर्शन वाला है। यह द्रव्य सामान्य में शुद्ध गुण-गुणी का भेद कथन है और जीव 'वीतरागता वाला है' – यह द्रव्य सामान्य में शुद्ध पर्याय-पर्यायी का भेद कथन है।[२] अथवा निरुपाधि गुण-गुणी में भेद को विषय करने

१. आलापपद्धति, पृ. २१७ २. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ-१४१

वाले नय को अनुपचरित सद्भूतव्यवहारनय कहते हैं।[१] जैसे जीव के केवलज्ञानादि गुण हैं। केवलज्ञानादि शुद्धगुणों का आधार होने के कारण कार्यशुद्ध जीव कहा जाता है।[२]

यह नय पूर्ण विकसित निर्मल पर्यायों को आत्मा का कहता है, इसलिए शुद्ध गुणों का आधारभूत होने से इसे शुद्ध सद्भूतव्यवहारनय कहते हैं।[३] जैसे – जीव में केवलज्ञानादि गुण।

यह नय आत्मा में ज्ञान, दर्शन, चारित्र के भेद करता है। जैसे – जीव ज्ञानवान है अथवा ज्ञान जीव का गुण है। यद्यपि जीव और ज्ञान भिन्न-भिन्न नहीं हैं, एक ही हैं; तदपि उनमें भेद देखना इस नय का विषय है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि यह नय द्रव्य की पूर्ण निर्विकारी शुद्ध गुण या शुद्ध पर्याय को विषय बनाता है। जैसे – पुद्गल की परमाणु पर्याय को और जीव की केवलज्ञानादि पर्याय को।

कर्त्ता-भोक्ता – इस नय के अनुसार आत्मा निर्मल पर्यायों का ज्ञाता, कर्त्ता-भोक्ता है।

नाम की सार्थकता – अनन्तगुण और अनन्तप्रदेश आत्मा में हैं, अतः सद्भूत हैं। आत्मा के गुण व प्रदेश अलग-अलग नहीं हो सकते, अतः 'अनुपचरित' हैं। इन गुण और प्रदेशों को भेद करके समझाया जाता है, अतः ये 'व्यवहार' हैं; तथा एक देश का कथन करने के कारण 'नय' हैं। अतः इसका अनुपचरित सद्भूतव्यवहारनय नाम सार्थक है।

प्रयोजन – स्वभाव की सामर्थ्य का ज्ञान कराना तथा आत्मा में अनुपचरित रूप से विद्यमान शक्तियों और पूर्ण पावन व्यक्तियों का परिचय कराना इस नय का प्रयोजन है।

---

१. आलापपद्धति, पृ. २२८
२. नियमसार गाथा ९ की तात्पर्यवृत्ति टीका
३. (अ) प्रवचनसार, जयसेनाचार्यकृत टीका का परिशिष्ट
   (ब) नियमसार गाथा ९ की तात्पर्यवृत्ति टीका

हेयोपादेयता – यह नय अपने शुद्ध स्वरूप को समझने के लिए उपयोगी है, अतः उपादेय है तथा जब तक भिन्नता पर लक्ष्य रहता है, ज्ञान भेद के विकल्पों में उलझता है; तब तक भेद में ही उलझे रहने से ज्ञान में विकल्प की तरंगें उठती हैं, जिससे अखण्ड आत्मा की प्राप्ति नहीं होती, इसलिए आत्मानुभूति नहीं होती। अतः यह नय हेय है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि चारों ही व्यवहारनय अपनी-अपनी सीमा में भिन्न-भिन्न वस्तुओं में अभेद का उपचार करते हैं या अभेद अखण्ड वस्तु में भेद करते हैं। व्यवहारनय की भाषा अज्ञानियों की भाषा है और भाव ज्ञानियों का। दुनिया जैसा मानती है वैसा ही इनमें बताया गया है। दुनिया का व्यवहार इसी प्रकार चलता है। यह नय दुनिया का प्रतिनिधित्व करने वाले नय हैं। सम्पूर्ण प्रथमानुयोग और चरणानुयोग की आधारशिला यही है। भेद-विज्ञान, दैनिक व्यवहार और सदाचार की दृष्टि से भी यह नय अत्यन्त उपयोगी हैं।

व्यवहारनय की विषयवस्तु का प्रतिपादन तो व्यवहारनय करता ही है, साथ ही साथ निश्चयनय की विषयवस्तु का प्रतिपादन भी व्यवहारनय ही करता है। व्यवहारनय को माने बिना समझने-समझाने की प्रक्रिया का लोप हो जाएगा, तीर्थ का लोप हो जाएगा।

आत्मा को वाणी के माध्यम से, गुरु के माध्यम से समझने के लिए व्यवहार की जरूरत है और आत्मा के अनुभव के लिए व्यवहार का निषेध आवश्यक है।

व्यवहार बिना आत्मा समझ में नहीं आता तथा व्यवहार छोड़े बिना आत्मा प्राप्त नहीं होता।

अतः व्यवहारनय के कथन प्रयोजनपुरतः सत्य हैं, व्यावहारिक सत्य हैं; पारमार्थिक सत्य नहीं। अतः व्यवहारनय अपनी सीमा में सर्वथा सत्यार्थ है और सीमा के बाहर सर्वथा असत्यार्थ।

इसीलिए व्यवहार को कथंचित् सत्यार्थ और कथंचित् असत्यार्थ कहा गया है, कथंचित् उपादेय और कथंचित् हेय कहा गया है।

व्यवहारनय की सबसे बड़ी उपयोगिता उसे अभूतार्थ, असत्यार्थ, हेय जानने में है। इससे ही हमारा प्रयोजन सिद्ध होता है। इसके बिना हमारा प्रयोजन सधने वाला नहीं।

निश्चयनय : भेदप्रभेद

निश्चयनय सामान्य विशेषात्मक वस्तु के सामान्य अंश को विषय बनाता है। सामान्य एक होता है, अतः उसे विषय बनाने वाला नय भी एक ही होगा, अनेक नहीं। अतः 'नतथा'[१] लक्षणवाला निश्चयनय एक है, अभेद्य है।

निश्चयनय अभेद्य क्यों? – निश्चयनय के अन्य भेदों को विवक्षानुसार कभी निश्चय तो कभी व्यवहार कह दिया जाता है। जैसे – एकदेश शुद्धनिश्चयनय की अपेक्षा अशुद्धनिश्चयनय व्यवहार है, साक्षात् शुद्धनिश्चयनय की अपेक्षा एकदेशनिश्चयनय और अशुद्ध निश्चयनय व्यवहार है तथा परमशुद्धनिश्चयनय की अपेक्षा साक्षात् शुद्धनिश्चयनय, एकदेश शुद्धनिश्चयनय और अशुद्ध निश्चयनय और व्यवहार ही हैं। परन्तु परमशुद्ध निश्चयनय कभी भी व्यवहारपने को प्राप्त नहीं होता, उसके कोई भेद नहीं होते; अतः वास्तविक निश्चयनय को भेदों में भेदा सह्य नहीं, वह तो अभेद्य ही है।[२]

अन्यनय व्यवहारपने को प्राप्त क्यों? द्रव्यस्वभाव को ग्रहण करने वाला होने से एकमात्र परमशुद्ध निश्चयनय ही वास्तविक निश्चयनय कहलाता है; शेष नय पर्याय स्वभाव को ग्रहण करने वाले होने से एवं निषेध्य होने के कारण व्यवहारपने को प्राप्त हो जाते हैं।

१. पंचाध्यायी, प्रथम अध्याय, श्लोक-६५७
२. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ-८२

अन्य नय निषेध्य क्यों? नयों के प्रयोजन की सिद्धि हो जाने पर उनकी उपयोगिता समाप्त हो जाती है, अतः उनका निषेध करना अनिवार्य हो जाता है। यदि उनका निषेधन करें तो उत्तरोत्तर विकास की प्रक्रिया रुक जाती है। अतः तत्संबंधी प्रयोजन की सिद्धि हो जाने पर, आगे बढ़ने के लिए, आगे के प्रयोजन की सिद्धि के लिए पूर्वकथित नय का निषेध एवं आगे के नय का प्रतिपादन इष्ट हो जाता है। इसीलिए एकदेश शुद्धनिश्चयनय अशुद्ध-निश्चयनय का, साक्षात-शुद्ध निश्चयनय एकदेश शुद्धनिश्चयनय का तथा परमशुद्धनिश्चयनय साक्षातशुद्धनिश्चयनय आदि पूर्व के नयों का निषेध करता है। इसप्रकार सभी नय अपने पूर्व के नयों का निषेध करते हैं।[१]

परमशुद्ध निश्चयनय निषेध्य क्यों नहीं? इस नय में द्रव्य की दृष्टि से कथन किया जाता है। यह नय पर्यायगत अशुद्धता को छोड़कर द्रव्यगत शुद्धता को विषय बनाता है अर्थात् जो अनादि से है अनन्त काल तक जीव के साथ रहेगा। ऐसे सामान्य द्रव्य को विषय बनाता है। इस नय का विषयभूत शुद्धात्मद्रव्य ही दृष्टि का विषय है। ध्यान का ध्येय है। इसके आश्रय से ही आत्मानुभूति होती है, मुक्ति होती है, अतः यह निषेध्य नहीं है।

क्या नय सर्वथा निषेध्य हैं? नहीं, नय सर्वथा निषेध्य नहीं हैं, क्योंकि कथंचित् निषेध्य हैं। प्रत्येक नय अपने-अपने प्रयोजन की सिद्धि करने वाला होने से स्वस्थान में निषेध करने योग्य नहीं है।

अभेद्य निश्चयनय के भेद क्यों? पर और पर्याय से भिन्न निज शुद्धात्मस्वरूप को समझने-समझाने के लिए विषयवस्तु के आधार पर अभेद्य निश्चयनय के भेद किए गए हैं।

निश्चयनय के भेद कितने – निश्चयनय के सामान्यतः दो भेद किये जाते हैं –

१. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ-९९

(१) अशुद्धनिश्चयनय।

(२) शुद्ध निश्चयनय।

शुद्धनिश्चयनय तीन प्रकार का है –

(i) एकदेशशुद्ध निश्चयनय।

(ii) साक्षात् शुद्ध निश्चयनय।

(iii) परम शुद्ध निश्चयनय।

इसप्रकार निश्चयनय भी चार प्रकार का हो गया। निश्चयनय के चारों भेदों को निम्न चार्ट द्वारा समझा जा सकता है –

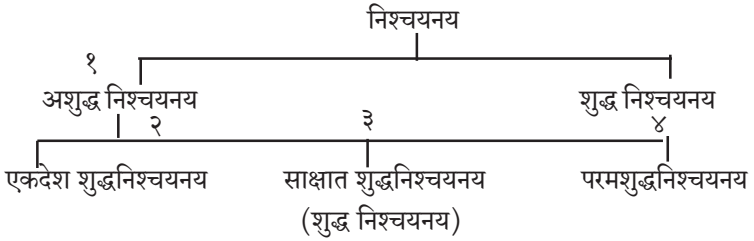

उक्त चार्ट में विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि 'शुद्ध निश्चयनय' के तीन भेदों में एक का नाम तो 'शुद्धनिश्चयनय' ही है। इससे यह सिद्ध होता है कि 'शुद्धनिश्चयनय' शब्द का प्रयोग१ कभी तो तीनों भेदों के समुदाय के रूप में होता है और कभी उनके एकभेद मात्र के रूप में। इस मर्म से अनभिज्ञ रहने से जिनवाणी में अनेक विरोधाभास प्रतीत होने लगते हैं।[२]

पाठकों की सुविधा की दृष्टि से प्रस्तुत कृति में हम भेदरूप शुद्ध निश्चयनय को सर्वत्र साक्षात् शुद्धनिश्चयनय के रूप में ही प्रस्तुत करेंगे।

भेद–प्रभेदों की सार्थकता – निश्चयनय के उक्त भेद–प्रभेदों में प्रत्येक द्रव्य की अपने गुण–पर्यायों से अभिन्नता (अभेद) को मुख्य आधार बनाया है।[३]

१. इन प्रयोगों को देखने के लिए डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल लिखित परमभाव प्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ–८०–८१ देखिए।

२. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ–८१ ३. वही, पृष्ठ–८३

प्रत्येक द्रव्य अपने गुण–पर्यायों से अभिन्न एवं पर तथा पर के गुण–पर्यायों से भिन्न है। इसीप्रकार प्रत्येक द्रव्य अपने परिणमन का कर्ता स्वयं है। किसी भी द्रव्य के परिणमन में किसी अन्य द्रव्य का कोई हस्तक्षेप नहीं है। निश्चयनय इस सत्य को प्रतिपादित करता है। इस बात को ध्यान में रखकर ही निश्चयनय के परम शुद्धनिश्चयनय को छोड़कर अन्य तीन भेद किए गए हैं।[१]

निश्चयनय के ये चारों भेद निज शुद्धात्मतत्त्व को पर और पर्याय से भिन्न अखण्ड त्रैकालिक स्थापित करते हैं। ये नय दृष्टि को पर और पर्याय से हटाकर स्वभावसन्मुख लाते हैं।[२]

नयों के उक्त भेद–प्रभेदों के बारे में एक बात विशेष ध्यान देने योग्य यह है कि प्रत्येक नय अपनी दृष्टि से जो भी कथन करता है, सम्पूर्ण द्रव्य के बारे में ही करता है। जैसे – परमशुद्ध निश्चयनय पर्याय में अशुद्धता होने पर भी द्रव्य को शुद्ध कहता है और अशुद्ध निश्चयनय द्रव्यांश में शुद्धता के रहते हुए भी पर्याय की अशुद्धता के आधार पर सम्पूर्ण द्रव्य को ही अशुद्ध कहता है।

इसीप्रकार एकदेश शुद्ध निश्चयनय भी द्रव्यांश में अशुद्धता के रहते हुए भी एक देशशुद्धि के आधार पर संपूर्ण द्रव्य को ही शुद्ध कहता है।[३] इस दृष्टि से ही साधक अवस्था में भी जीव सिद्धोंवत् पूर्णशुद्ध ही ग्रहण करने में आता है। इसप्रकार सभी कथनों में कोई विरोध नहीं है[४] एवं सभी नय अपने–अपने स्थान पर सही हैं, सत्यार्थ हैं, सार्थक हैं।

प्रयोजन – निज द्रव्य में अन्य द्रव्यों के हस्तक्षेप का निषेध एवं अपनी आन्तरिक अखण्डता (गुणभेदादि का निषेध) कर द्रव्य की

१. परमभावप्रकाशक नयचक्र पृष्ठ–८३

२. वही, पृष्ठ–८४ ३. वही, पृष्ठ–८९

४. वही, पृष्ठ–९०

अखण्डता को कायम रखकर, अन्य द्रव्यों से उसकी पृथकता स्थापित कर निज स्वभाव की ओर दृष्टि कराना ही इस नय का प्रयोजन है।[१]

हेयोपादेयता – यह नय अशुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा हेय है, एकदेश शुद्धनिश्चयनय और साक्षात शुद्धनिश्चयनय के दृष्टिकोण से प्रगट करने की अपेक्ष्य उपादेय हैं और परमशुद्धनिश्चयनय के दृष्टिकोण से आश्रय करने की अपेक्षा एक मात्र यही उपादेय है।

(१) अशुद्धनिश्चयनय

स्वरूप और विषयवस्तु – सोपाधिक गुण-गुणी[२] और रागादि विकारी भावों[३] से आत्मा को अभिन्न बताने वाले नय को अशुद्ध-निश्चयनय कहते हैं। जैसे – मैं रागी हूँ, क्रोधी हूँ कहना अथवा मति-ज्ञानादि को जीव कहना।

यह नय द्रव्यांश में शुद्धता के रहते हुए भी पर्याय की अशुद्धता के आधार पर सम्पूर्ण द्रव्य को ही औदयिकवत् पूर्ण अशुद्ध कहता है।[४] अतः क्षयोपशमभाव में विद्यमान अशुद्धता के अंश के साथ अभेदता भी यह नय बतलाता है।[५]

इसप्रकार यह नय रागादि विकारी भावों से जीव को तन्मय (अभेद) बताता है। इस दृष्टि से यह रागादि जीव के अपने ही भाव हैं, जड़कर्म के नहीं। जैसे – आत्मा रागादि रूप है।

इस नय से ही सांसारिक सुख-दुःख और राग-द्वेष आदि को जीव जनित कहा जाता है।[६]

१. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ-१२१
२. आलापपद्धति, अन्तिम पृष्ठ-८६
३. (अ) नियमसार गाथा १८ की टीका
   (ब) प्रवचनसार, तात्पर्यवृत्ति का परिशिष्ट
४. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ-९०
५. क्षयोपशम भाव में शुद्धता और अशुद्धता दोनों का मिश्रण रहता है। वही, पृष्ठ-९०
६. वही, पृष्ठ-८०-८१

मोह, राग-द्वेषादि भावकर्मों का नाश भी इसी नय से कहा जाता है, क्योंकि इसी नय से मोहादि का अस्तित्व स्वीकार किया है। जहाँ अस्तित्व होगा, विनाश भी वहीं होगा।

संक्षेप में कहें तो इस नय में द्रव्य के साथ उसकी अशुद्ध पर्याय का अभेद बताया जाता है, अशुद्ध भावों के आधार पर जीव को दर्शाया जाता है।

कर्त्ता-भोक्तापना – अशुद्ध क्षायोपशमिक भावों और औदयिक भावों का कर्त्ता-भोक्ता इसी नय से कहा जाता है।[१] जीव पर्यायरूप भावाश्रव, भावबंध, भाव पुण्य-भाव पाप पदार्थों और रागादि का कर्त्ता-भोक्ता भी इसी नय से कहा जाता है।[२]

नाम की सार्थकता – यह नय कर्मोपाधि से उत्पन्न हुआ होने से 'अशुद्ध' कहलाता है और अपने ही भावों के साथ तन्मय होने से 'निश्चय' अंश का कथन करने के कारण 'नय' कहलाता है। इसप्रकार इसका 'अशुद्ध निश्चयनय' नाम सार्थक है।[३]

गुणस्थान – अशुद्ध पर्याय को ग्रहण करने वाला यह नय प्रथम गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक होता है।[४]

यहाँ प्रश्न होता है कि अशुद्धनिश्चयनय में शुद्धोपयोग किसप्रकार घटित होगा? चूँकि शुद्धोपयोग में शुद्ध-बुद्ध, एकस्वभावी निजात्मा ध्येय होता है, इसलिए शुद्ध ध्येयवाला होने से, शुद्ध अवलम्बनवाला होने से और शुद्धात्मस्वरूप का साधक होने से अशुद्धनिश्चयनय में शुद्धोपयोग घटित होता है।[५]

प्रयोजन – यह नय विकारी भावों से एकता स्थापित कर जीव को

१. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ-८६
२. वही, पृष्ठ-८६ ३. वही, पृष्ठ-९२
४. वही, पृष्ठ-९३ ५. वही, पृष्ठ-९४

उसके द्वारा किए गए रागादिरूप अपराधों की स्वीकृति कराता है, उनके कर्तृत्व और भोक्तृत्व को भी स्वीकार करता है, उन्हें कर्मकृत या परकृत कहकर उनका उत्तरदायित्व दूसरों पर नहीं थोपता। अपने अपराधों की स्वीकृति ही उसके दूर करने का उपाय है।[१] इसप्रकार यह नय हमें बताता है कि रागादि विकारी भाव स्वयं की भूल से ही स्वयं में हुए हैं, अतः उनके कर्त्ता-भोक्ता भी हम स्वयं ही है। अपना भला-बुरा करने में हम स्वयं समर्थ हैं और उसके लिए पूर्ण स्वतंत्र हैं।

इस नय को नहीं मानने से आत्मा में रागादि भाव नहीं रहेंगे। रागादि भाव का अभाव होने पर आश्रव, बन्ध, पुण्य और पाप तत्त्व का भी अभाव हो जाने से संसार का ही अभाव हो जायेगा। संसार का अभाव होने से मोक्ष का भी अभाव हो जाएगा, क्योंकि मोक्ष संसारपूर्वक ही तो होता है।[२]

दूसरे रागादि भाव भी आत्मा से वैसे ही भिन्न सिद्ध होंगे, जैसे कि अन्य परद्रव्य, जो कि प्रत्यक्ष से विरुद्ध है। मृत्यु के बाद देहादि परपदार्थ यहाँ रह जाते हैं, पर राग-द्वेष साथ जाते हैं।[३]

संक्षेप में कह सकते हैं कि अशुद्ध भावों का त्याग कराके शुद्धभावों में स्थिरता कराना और अपना उपयोग पर से हटाकर अपने में लाना ही इस नय का प्रयोजन है।[४]

हेयोपादेयता – राग-द्वेषादि रूप विकारी पर्यायों को ग्रहण करने वाला यह नय संसारमार्गी है।[५] दुःख का कारण है, अतः हेय है। अथवा इस नय का विषय राग-द्वेषादि रूप विकारीभाव होने से संसार का कारण है, दुःख का कारण है, अतः हेय है।

१. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ-९५
२. वही, पृष्ठ-९८ ३. वही, पृष्ठ-९८
४. वही, पृष्ठ-९५ ५. वही, पृष्ठ-१०९

(२) शुद्धनिश्चयनय

शुद्ध निश्चयनय तीन प्रकार का है –

(i) एकदेश शुद्धनिश्चयनय।

(ii) साक्षात् शुद्धनिश्चयनय।

(iii) परमशुद्धनिश्चयनय।

(i) एकदेश शुद्धनिश्चयनय

स्वरूप और विषयवस्तु – जो नय एकदेश शुद्धता से तन्मय द्रव्य सामान्य को पूर्ण शुद्ध देखता है, उसे एकदेश शुद्धनिश्चयनय कहते हैं।[१] अर्थात् एकदेश शुद्ध पर्यायों से आत्मा को अभिन्न बताने वाले नय को एकदेश शुद्धनिश्चयनय कहते हैं। जैसे – सम्यग्दर्शन पर्याय सहित आत्मा को सम्यग्दृष्टि कहना।

इस नय का प्रयोग क्षायोपशमिकभाव में विद्यमान शुद्धता के अंश के साथ आत्मा की अभेदता में होता है अर्थात् निर्मल किन्तु अपूर्ण पर्याय के साथ अभेदता में ही होता है। पर्याय की निर्मलता इसे अशुद्ध निश्चयनय से पृथक् रखती है एवं अपूर्णता साक्षात् शुद्धनिश्चयनय से पृथक् करती है।[२]

यह नय एकदेश शुद्धि के आधार पर सम्पूर्ण द्रव्य को शुद्ध कहता है, एकदेश शुद्धता में पूर्ण शुद्धता का कथन करता है।[३] इस दृष्टि से ही साधक अवस्था में भी जीव सिद्धोंवत् पूर्ण शुद्ध ही ग्रहण करने में आता है।[४]

सांसारिक सुख-दुःख और राग-द्वेषादि औदयिक भाव इस नय से कर्मजनित कहलाते हैं।[५]

१. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ-८५
२. वही, पृष्ठ-९१ ३. वही, पृष्ठ-८९
४. वही, पृष्ठ-९० ५. वही, पृष्ठ-८१

कर्त्ता–भोक्तापना – जीव पर्यायरूप भाव संवर, भाव निर्जरा और भाव मोक्ष पदार्थों का कर्त्ता–भोक्ता इस नय से कहा जाता है।[१] छद्मस्थ अवस्था में केवलज्ञानादि भावों का[२] और पूर्ण शुद्धोपयोग का कर्त्ता तथा परमानन्द का भोक्ता इसी नय से कहा जाता है।[३]

नाम की सार्थकता – इस नय का प्रयोग निर्मल परन्तु अपूर्ण पर्याय के साथ अभेदता में ही होता है; इसलिए इसे अपूर्णता की अपेक्षा 'एकदेश' निर्मलता–शुद्धता की अपेक्षा 'शुद्ध' एवं अपनी पर्याय होने से 'निश्चय' और अंश का कथन करने के कारण 'नय' कहा जाता है। इसप्रकार इसका एकदेश शुद्धनिश्चयनय नाम सार्थक है।

गुणस्थान – अपूर्ण, शुद्ध पर्याय को ग्रहण करने वाला यह नय चतुर्थ गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक होता है।

प्रयोजन – साधक दशा को बताने वाले इस नय को नहीं मानने से साधक दशा का ही अभाव हो जाएगा। साधक दशा का नाम ही मोक्षमार्ग है; अतः मोक्षमार्ग ही न रहेगा। मोक्षमार्ग नहीं होगा तो मोक्ष का भी अभाव हो जाएगा।

विकारी पर्याय यद्यपि अपने में ही उत्पन्न हुई है, अतः यह नय विकार से हटाने के लिए एकदेश निर्मलपर्याय में अभेद स्थापित करता है, मुक्ति मार्ग के साथ अभेदता बताता है।

संक्षेप में कहें तो विकारी पर्याय से पृथकता स्थापित कर एकदेश–निर्मल पर्याय में ही त्रिकाली ध्रुव की एकता स्थापित करना इस नय का प्रयोजन है।[४]

हेयोपादेयता – एकदेश निश्चयनय का विषय एकदेश निर्मल अर्थात् अपूर्ण पवित्र होने के कारण ही ध्याता पुरुष इसमें अहं स्थापित नहीं

१. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ–९३ २. वही, पृष्ठ–८८
३. वही, पृष्ठ–९० ४. वही, पृष्ठ–९६

करता क्योंकि अपूर्णता के लक्ष्य से पर्याय में पूर्णता की प्राप्ति नहीं होती; अतः आत्मा में एकत्व स्थापित करने की दृष्टि से यह नय हेय है,[१] किन्तु इसका विषय मोक्षमार्ग रूप पर्याय से परिणत आत्मा है, जो कि मोक्षमार्ग रूप होने से साधन है। साधन होने से प्रगट करने की अपेक्षा यह नय एकदेश उपादेय है।[२]

(ii) साक्षात् शुद्धनिश्चयनय

स्वरूप और विषयवस्तु – निरूपाधिक गुण–गुणी और पूर्ण शुद्ध केवलज्ञानादि पर्यायों से आत्मा को अभिन्न बताने वाले नय को साक्षात् शुद्धनिश्चयनय कहते हैं। जैसे – जीव को शुद्ध केवलज्ञानादिरूप कहना।[३] यह नय पूर्ण शुद्ध गुण–पर्यायों से एकता स्थापित करता है, क्षायिक भावों के साथ अभेदता बताता है। इसी अपेक्षा क्षायिक सम्यग्दृष्टि को 'दृष्टि मुक्त' कहा जाता है। यह भी कहा जाता है कि दृष्टि अपेक्षा वह सिद्ध ही हो गया।[४]

यह नय सांसारिक सुख–दुःख और राग–द्वेष की उत्पत्ति से ही इंकार करता है।[५]

संक्षेप में कहें तो इस नय का विषय मोक्षरूप से परिणत आत्मा है, जो कि मोक्षरूप, परिपूर्ण सुखरूप होने से साध्य है।

कर्त्ता–भोक्तापना – जीव के क्षायिक भावों का कर्त्ता–भोक्ता इसी नय से कहा जाता है।

नाम की सार्थकता – चूँकि इस नय का प्रयोग साक्षात् सुख स्वरूप पूर्ण पर्याय के साथ अभेदता में ही होता है। अतः पूर्णता की अपेक्षा 'साक्षात्', शुद्धता की अपेक्षा 'शुद्ध' एवं अपनी पर्याय होने से 'निश्चय' और अंग का कथन करने के कारण 'नय' कहा जाता है। इसप्रकार इसका साक्षात् शुद्धनिश्चयनय नाम सार्थक है।

१. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ–१०७ २. वही, पृष्ठ–१०९
३. वही, पृष्ठ–८५ ४. वही, पृष्ठ–९२ ५. वही, पृष्ठ–८१

गुणस्थान – क्षायिक भावों को ग्रहण करनेवाला यह नय चौथे गुणस्थान से सिद्धों तक घटित हो सकता है। क्षायिक सम्यग्दर्शन की अपेक्षा यह चौथे गुणस्थान में भी पाया जाता है।[१]

प्रयोजन – यह नय नहीं मानने पर क्षायिक भाव के अभाव होने से मोक्ष और मोक्षमार्ग का अभाव सिद्ध होगा, क्योंकि फिर तो एकमात्र परमभावग्राही शुद्धनय रहेगा और उसकी दृष्टि से तो बंध-मोक्ष है ही नहीं।[२]

इस नय के विषयभूत क्षायिकभाव रूप प्रकट पर्यायों के आधार पर ही त्रिकाली शुद्धात्मा के स्वरूप का निश्चय होता है; अतः पूर्ण शुद्ध स्थायी पर्याय में एकता स्थापित करना इस नय का प्रयोजन है।

हेयोपादेयता – साक्षात् शुद्धनिश्चयनय का विषयरूप क्षायिक पर्याय यद्यपि पूर्ण है, पवित्र है; पर ध्याता पुरुष इसमें भी अहं स्थापित नहीं करता; क्योंकि उसके आश्रय से पवित्रता प्रगट नहीं होती।[३] अतः आश्रय करने की दृष्टि से यह नय हेय है, किन्तु प्रगट करने की अपेक्षा यह नय उपादेय है।

(iii) परमशुद्धनिश्चयनय

स्वरूप और विषयवस्तु – त्रिकाली शुद्ध परम पारिणामिक सामान्यभाव को ग्रहण करने वाले नय को परमशुद्धनिश्चयनय कहते हैं।[४] अर्थात् समस्त विकारी-अविकारी पर्यायों से रहित त्रिकाली द्रव्य स्वभाव को विषय बनाने वाले नय को परमशुद्ध निश्चयनय कहते हैं। जैसे – परम स्वभावभूत गुणों का आधार होने से कारणशुद्धजीव।[५] अथवा सत्ता, चैतन्य व ज्ञानादि शुद्ध प्राणों से युक्त जीव।[६]

१. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ-९१-९२
२. वही, पृष्ठ-९८ ३. वही, पृष्ठ-१०८ ४. वही, पृष्ठ-८४
५. नियमसार गाथा ९ की संस्कृत टीका ६. पंचास्तिकायसंग्रह, गाथा-२७ की टीका

इस नय के अनुसार सांसारिक सुख-दुःख और राग-द्वेष हैं ही नहीं अर्थात् परमशुद्धनिश्चयनय के विषयभूत आत्मा में नहीं है।[१]

इसका विषय बंध-मोक्ष पर्याय से रहित शुद्धात्मा है।[२]

इसप्रकार हम देखते हैं कि यह नय त्रिकाली द्रव्य स्वभाव को अपना विषय बनाता है। इसका विषय तो परजीवों, पुद्गलादि अजीवों तथा आश्रवादि पर्यायों से पृथक्, गुणभेद से भिन्न, अभेद, अखण्ड, त्रिकाली आत्मतत्त्व ही है।[३] इन्हें कहीं-कहीं संक्षेप में पर और पर्यायों से भिन्न भी कहा जाता है।

अकर्त्ता-अभोक्तापना – परमार्थ से जीव उत्पन्न नहीं होता है, मरता नहीं है, बंध और मोक्ष करता नहीं है, इसलिए इस नय से जीव अकर्त्ता-अभोक्ता है।[४]

नाम की सार्थकता – यह नय गुण-गुणी में अभेद करके अभेद द्रव्य को विषय करता है, इसलिए 'निश्चय' है और त्रिकाली शुद्ध परम पारिणामिक सामान्य भाव के साथ अभेद बताता है, इसलिए 'परमशुद्ध' है, अंश का कथन करने के कारण 'नय' है। अतः इसका परमशुद्ध-निश्चयनय नाम सार्थक है।

गुणस्थान – द्रव्य के परमपारिणामिकभाव रूप सामान्य अंश को ग्रहण करने वाला होने से यह नय निगोद से सिद्धों तक, संसारी और मुक्त समस्त जीवों के पाया जाता है। अतः यह चौदह गुणस्थानों और गुणस्थानातीत सिद्धों में भी पाया जाता है।[५]

वर्णादि से लेकर गुणस्थान पर्यन्त के सभी भाव जीव के नहीं हैं – यह कथन इसी नय की अपेक्षा किया जाता है।

'सर्व जीव हैं सिद्ध सम' 'मम स्वरूप है सिद्ध समान' या 'सिद्ध समान सदा पर मेरो'[६] – आदि कथन इसी नय के हैं; क्योंकि इसमें सिद्ध के समान

१. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ-८१ २. वही, पृष्ठ-१०९
३. वही, पृष्ठ-१०२ ४. वही, पृष्ठ-९३ ५. वही, पृष्ठ-९१ ६. वही, पृष्ठ-९१

सदा ही अपना पद बताया गया है। यह कथन किसी पर्याय की अपेक्षा नहीं किया गया है, अपितु स्वभाव की अपेक्षा किया गया कथन है।[१]

प्रयोजन – यह नय कहता है कि यद्यपि पूर्ण शुद्ध क्षायिक भाव स्थायी है, संतति की अपेक्षा अनन्त है; पर अनादि का नहीं। मैं तो अनादि-अनन्त तत्त्व हूँ। अतः क्षायिक भावों रूप पूर्ण शुद्ध पर्यायों से भी पृथक्ता स्थापित कर अनादि-अनन्त त्रिकाली ध्रुव तत्त्व में एकता स्थापित करना ही इस नय का प्रयोजन है।

हेयोपादेयता – इस नय का विषय बंध-मोक्ष पर्याय से रहित त्रिकाली ध्रुव सामान्य तत्त्व होने से ध्येय है, हेय नहीं। इसका विषय त्रिकाली ध्रुव शुद्धात्मा आश्रय करने की अपेक्षा उपादेय है।

यह नय नयाधिराज क्यों? यह नय भेद विकल्पों का निषेध कर, अन्य द्रव्यों से पृथकता स्थापित करते हुए, आन्तरिक अखण्डता को कायम रखता है। द्रव्य की यही अखण्डता दृष्टि का विषय है, श्रद्धा का श्रद्धेय है, ध्यान का ध्येय है। इसी से आत्मानुभूति होती है, सच्चे सुख की प्राप्ति होती है, मुक्ति की प्राप्ति होती है; अतः यह नय नयाधिराज है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि निश्चयनय में इन चार भेदों में प्रथम तीन भेद पर्याय सहित वाले हैं और चौथा परमशुद्धनिश्चयनय पर्याय रहित वाला है अर्थात् परमशुद्धनिश्चयनय का कार्य अपनी पर्यायों में भी भिन्नता बताना है तथा शेष तीनों भेद अपने गुण-पर्यायों से अभिन्नता और पर के गुण पर्यायों से भिन्नता बताते हैं।

यह नय जो अनादि से हैं, अनन्तकाल तक रहेगा ऐसे ज्ञान को विषय बनाता है अर्थात् पर्यायवान अशुद्धता को छोड़कर द्रव्यगत शुद्धता को विषय बनाता है। इस नय के अनुसार आत्मा राग में मिलता ही नहीं है। अल्पज्ञता और सर्वज्ञता से रहित जो जीव है, वही मैं हूँ। यही

१. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ-९२

जीव ध्यान का ध्येय है। जब इस नय का विषय आत्मा ध्यान का ध्येय बनाता है, तब शेष सभी नय (तीन निश्चयनय + चार व्यवहारनय) व्यवहार हो जाते हैं।

जैसा कि पहले कह आए हैं कि निश्चयनय के उक्त भेद न तो सर्वथा निषेध्य हैं और न सर्वथा अनिषेध्य। प्रत्येक नय अपने-अपने प्रयोजन की सिद्धि करने वाला होने से स्वस्थान में निषेध करने योग्य नहीं हैं। प्रयोजन की सिद्धि हो जाने पर उसकी उपयोगिता समाप्त हो जाती है, अतः उसका निषेध करना अनिवार्य हो जाता है। यदि उसका निषेध न करें तो उत्तरोत्तर विकास की प्रक्रिया रुक जाती है। अतः तत्संबंधी प्रयोजन की सिद्धि हो जाने पर, आगे बढ़ने के लिए आगे के प्रयोजन की सिद्धि के लिए पूर्वकथित नय का निषेध एवं आगे के नय का प्रतिपादन इष्ट हो जाता है। इसीलिए एकदेश शुद्धनिश्चयनय अशुद्धनिश्चयनय का, साक्षात्शुद्धनिश्चयनय एकदेश शुद्धनिश्चयनय और अशुद्धनिश्चयनय का तथा परम शुद्धनिश्चयनय साक्षात्शुद्ध निश्चयनय आदि पूर्व के नयों का अभाव करता हुआ उदित होता है।[१] इसप्रकार हम देखते हैं कि – सभी नय अपने पूर्व के नयों का निषेध करते हैं; पर सबका निषेध करने वाला परमशुद्धनिश्चयनय कभी भी किसी भी नय द्वारा निषिद्ध नहीं होता, क्योंकि परम शुद्धनिश्चयनय का विषयभूत शुद्धात्म द्रव्य ही दृष्टि का विषय है। इसके आश्रय से ही आत्मानुभूति प्रगट होती है।

नयों की सत्यता-असत्यता – अथवा सर्वाधिक वजनदार नय कौन? – नयों की सत्यता-असत्यता वस्तुस्वरूप में विद्यमान व्यवस्था के अनुपात में है। जिस भेदाभेद का वस्तुस्वरूप में जितना वजन है, उतनी ही सत्यता उसे विषम बनाने वाले नय में है।[२]

१. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ-९९
२. वही, पृष्ठ-१२२

चारों ही व्यवहारनय अपनी-अपनी सीमा में अभेद-अखण्ड वस्तु में भेद करते हैं या भिन्न-भिन्न वस्तुओं में अभेद का उपचार करते हैं। प्रत्येक की बात में वजन भी है, पर सभी की बात एक-सी वजनदार नहीं होती अर्थात् प्रत्येक का कथन अपने-अपने प्रयोजनों की सिद्धि की अपेक्षा सत्यार्थ होता है, तो भी सभी का कथन एकसा सत्यार्थ नहीं होता। प्रत्येक नय कथन की सत्यार्थता उसके द्वारा प्रतिपादित विषय की सत्यार्थता के अनुपात में ही होती है।[१]

उपचरित असद्भूतव्यवहारनय की बात में भी सत्यार्थता है; वजन है; असत्यार्थ मान कर उसे ऐसे ही नहीं उड़ाया जा सकता है, क्योंकि इस नय के कथनों का भी आधार होता है। इसके कथन सर्वथा असत्य नहीं है।[२] हाँ इतना अवश्य है कि उपचरित असद्भूतव्यवहारनय की बातें उतनी वजनदार नहीं होती, जितनी अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय की बात होती है। जैसे - देवदत्त का मकान और देवदत्त का शरीर - इन दो कथनों में वजन का अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है।[३]

इन दोनों असद्भूतनयों से भी वजनदार बात होती है। उपचरित सद्भूतव्यवहारनय की, क्योंकि उसमें एक द्रव्य में ही भेद किए जाते हैं। जैसे - मतिज्ञानादि व रागादि को आत्मा का कहना।

इनकी सत्ता स्वद्रव्य की मर्यादा के भीतर ही है। अतः इनका वजन असद्भूत के दोनों भेदों से भी अधिक है, पर ये अनुपचरित सद्भूत से कम वजनदार हैं, क्योंकि अनुपचरित सद्भूत में पूर्ण निर्विकारी पर्याय या गुण लिये जाते हैं। जैसे - केवलज्ञान आत्मा की शुद्ध पर्याय है या ज्ञान आत्मा का गुण है।[४]

इसप्रकार हम देखते हैं कि व्यवहार की बात में भी वजन है और नय कथनों के उक्त क्रम में उत्तरोत्तर अधिक वजन है।

१. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ-१२३ २. वही, पृष्ठ-१२४
३. वही, पृष्ठ-१२४ ४. वही, पृष्ठ-१२५

उक्त चारों व्यवहारों से भी अधिक वजन निश्चयनय में होता है। यही कारण है कि उसके सामने इनका वजन काम नहीं करता और वह इनका निषेध कर देता है। निषेध की बात निश्चयनय की सीमा में आती है।[१] निषेध वचनों का नाम ही निश्चयनय है।

चारों व्यवहारनयों में अधिक वजन अशुद्ध निश्चयनय में होता है, क्योंकि यह अशुद्ध पर्यायों में अभेद को विषय बनाता है। लेकिन यह एकदेश शुद्धनिश्चयनय से कम वजनदार है, क्योंकि यह नय एकदेश शुद्ध पर्यायों में अभेद को विषय बनाता है।

एकदेश शुद्ध निश्चयनय से अधिक वजन साक्षात् शुद्धनिश्चयनय में होता है, क्योंकि यह पूर्ण शुद्ध पर्यायों में अभेद को विषय बनाता है। लेकिन यह परमशुद्धनिश्चयनय से कम वजनदार है, क्योंकि यह नय पर्यायों से रहित त्रिकाली द्रव्य को विषय बनाता है। यह नय सब भेद विकल्पों का निषेध कर स्वयं निषिद्ध हो जाता है, निरस्त हो जाता है। अतः यही नय सर्वाधिक वजनदार है, उपादेय है, सत्यार्थ है।

प्रस्तुत कृति में नयों का क्रम उक्त नयों के वजन के आधार पर रखा गया है। जिस नय का वजन कम है, वह सर्वप्रथम किया है, उत्तरोत्तर नयों का वजन बढ़ता जाता है।

संक्षेप में हम डॉ. भारिल्ल के शब्दों में कह सकते हैं कि उक्त आठ नय हमें सारी दुनिया से अलग कर शुद्धात्मा तक पहुँचाते हैं, दृष्टि को पर और पर्याय से हटाकर स्वभाव सन्मुख ले जाते हैं। इन नयों द्वारा आत्मा का सही ज्ञान होता है। आत्मा के सही ज्ञान से आत्मानुभूति होती है। आत्मानुभूति से ही मिथ्यात्व का नाश होता है। आत्मानुभूति सच्चे सुख को प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है। ●

१. परमभावप्रकाशक नयचक्र, पृष्ठ-१२५

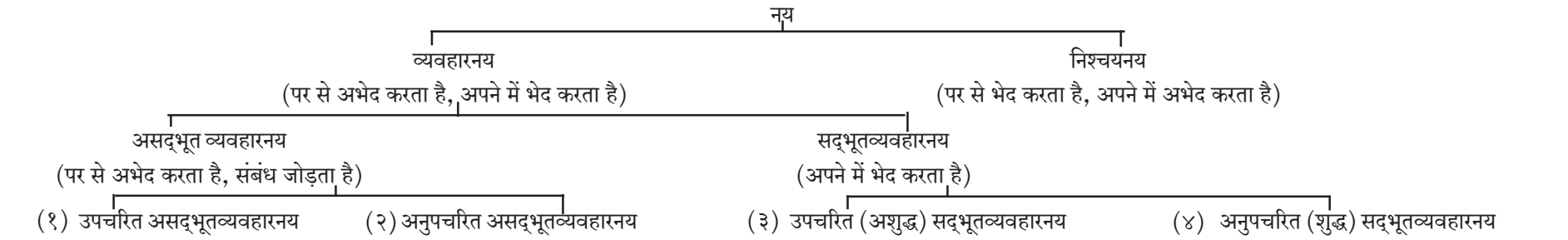

१) दूर के संबंध संयोग संबंध को विषय बनाता है।
२) माता-पिता, स्त्री-पुत्र, मकान आदि को अपना कहने वाला है; क्योंकि इनमें संयोग संबंध है, जो सदा हमारे साथ नहीं रहते हैं।
३) बाह्य संयोगों का ज्ञान कराता है। जैसे ह्न रमेश की सम्पत्ति।
४) यह नय उपचार में उपचार करता है। शरीर से संबंधित वस्तुओं को अपनी कहता है ह्न जैसे ह्न मेरे पिता, मेरा भाई आदि।
५) रोटी-मकान आदि संयोगों का एवं पंचेन्द्रिय के विषयों का कर्त्ता-भोक्ता इसी नय से कहा जाता है ह्न जैसे ह्न मैं मकान बनाता हूँ आदि।
६) बाह्य विभूति समवशरण के आधार पर तीर्थंकरों की स्तुति इस नय से की जाती है।
७) औपचारिकता निभानी पड़ती है, अतः उपचरित है।
८) इसके बिना प्रथमानुयोग नहीं बनेगा।
९) स्वधन-परधन, स्व-माता, पर-माता में अंतर स्पष्ट करने वाला है।
१०) इस नय के बिना धार्मिक और नैतिक जीवन संभव नहीं।
११) यह नय सदाचार की सिद्धि करने वाला है।

१) पास के संबंध संश्लेष संबंध को विषय बनाता है।
२) देह को अपना कहने वाला है, क्योंकि इनमें संश्लेष संबंध है। यह संबंध जन्म से मरण तक सदा हमारे साथ रहता है।
३) शरीर के संयोग का ज्ञान कराता है। जैसे ह्न शरीर मेरा है।
४) यह नय भिन्न द्रव्यों में उपचार करता है ह्न जैसे ह्न मैं गोरा, मैं बीमार आदि।
५) द्रव्य कर्म, नोकर्म (शरीर) का कर्त्ता-भोक्ता इसी नय से कहलाता है। जैसे ह्न मैं व्यायाम से स्वस्थ रहता हूँ।
६) देह के आधार पर तीर्थंकरों की स्तुति इस नय से की जाती है।
७) औपचारिकता नहीं निभानी पड़ती है, अतः अनुपचरित है।
८) इसके बिना चरणानुयोग नहीं बनेगा।
९) सजीव और अजीव में अंतर स्पष्ट करने वाला है।
१०) इस नय के बिना अणुव्रत और महाव्रत संभव नहीं।
११) यह नय अहिंसात्मक आचरण की सिद्धि करनेवाला है।

१) यह नय अशुद्ध विकारी पर्यायों में भेद को विषय बनाता है।
२) पर के लक्ष्य से उत्पन्न होने वाले राग-द्वेष को अपना कहने वाला है; क्योंकि वे आत्मा में ही पैदा होते हैं। जैसे ह्न मुझमें राग-द्वेष है।
३) सोपाधि गुण-गुणी में भेद को विषय करने वाला है। जैसे ह्न जीव के मतिज्ञानादि गुण।
४) यह नय अल्पविकसित मतिज्ञानादि और विकारी पर्यायों को जीव की कहता है।
५) रागादि भावकर्म (संयोगीभावों) का कर्त्ता इसी नय से कहा जाता है। जैसे ह्न मुझे अपनी बहन से बहुत **प्रेम** है।
६) इसका विषय अशुद्ध गुण-गुणी और अशुद्ध पर्याय है।
७) यह हमारी वर्तमान अवस्था का ज्ञान कराता है।
८) यह नय आत्मा की अपूर्ण और विकृत पर्यायों का ज्ञान कराता है।
९) आत्मा की सुख-शांति के घातक मोहादि परिणामों को आत्मा नहीं माना जा सकता, अतः उन्हें आत्मा कहने वाला नय कथंचित् हेय है।
१०) अपनी भूलों की पुनरावृत्ति न करने की सीख देनेवाला होने से यह नय कथंचित् उपादेय है।
११) यह नय वर्तमान पर्याय की पामरता का ज्ञान कराकर उससे मुक्त होने की प्रेरणा देता है।

१) यह नय शुद्ध पर्यायों में भेद को विषय बनाता है।
२) आत्मा में गुणभेद-पर्यायभेद कर ज्ञानादि को अपना कहनेवाला है। जैसे मुझमें ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है।
३) निरूपाधि गुण-गुणी में भेद को विषय करने वाला है। जैसे ह्न जीव के केवलज्ञानादिगुण।
४) पूर्ण विकसित निर्मल केवलज्ञानादि पर्याय या गुण को जीव की कहता है।
५) पूर्ण विकसित निर्मल पर्यायों का कर्त्ता-भोक्ता इसी नय से कहा जाता है। जैसे ह्न जीव केवलज्ञान से सुखी होता है।
६) इसका विषय शुद्ध गुण-गुणी और शुद्ध पर्याय है।
७) यह नय स्वभाव की सामर्थ्य का ज्ञान कराता है।
८) यह नय आत्मा में अनुपचरित रूप से विद्यमान शक्तियों और पूर्ण पावन व्यक्तियों का परिचय कराता है।
९) भेद में ही उलझे रहने से अभेद-अखण्ड आत्मा की प्राप्ति नहीं होती, इसलिए इसका निषेध किया जाता है। अतः यह नय भी कथंचित् हेय है।
१०) अपने शुद्ध स्वरूप को समझने के लिए यह नय उपयोगी है, अतः यह नय कथंचित् उपादेय है।
११) यह नय हीनभावना से मुक्ति दिलाकर आत्मगौरव उत्पन्न करता है।

निश्चयनय

(१) अशुद्ध निश्चयनय

शुद्ध निश्चयनय

(२) एकदेश शुद्धनिश्चयनय

(३) साक्षात्शुद्ध निश्चयनय

(४) परमशुद्ध निश्चयनय

(१) अशुद्ध निश्चयनय

(अपनी पर्यायों में अभेद करता है)

१) यह नय अशुद्ध पर्याय में अभेद को विषय बनाता है।
२) पर के लक्ष्य से उत्पन्न होने वाले रागादि भावों को आत्मा कहनेवाला है।
जैसे ह्न मैं रागी, द्वेषी हूँ।
३) सोपाधि गुण-गुणी में अभेद को विषय करने वाला है।
४) यह नय अल्पविकसित और विकारी पर्यायों को जीव कहता है। जैसे ह्न मैं मिथ्यादृष्टि हूँ।
५) जीव भाव पर्यायरूप आश्रव-बंध, पुण्य-पाप पदार्थों का कर्त्ता-भोक्ता इस नय से हैं।
जैसे ह्न मैं दानी हूँ, व्रती हूँ।
६) यह नय रागादि भावों के साथ एकता स्थापित करता है।
७) यह नय औदयिक और क्षायोपशमिक भावों में विद्यमान अशुद्धता के अंश के साथ जीव की अभेदता बतलाता है।
८) सांसारिक सुख-दुःख और राग-द्वेष जीव जनित हैं।
९) इसका विषय राग-द्वेषरूप पर्याय से परिणत आत्मा संसार मार्गी होने से न साधन है, न साध्य हैं; अपितु हेय है।
१०) यह नय पर्यायस्वभाव को ग्रहण करता है।
११) प्रथम गुणस्थान से बारहवें तक होता है।
१२) अपने अपराधों की स्वीकृतिपूर्वक परिहार अथवा अपना उपयोग पर से हटाकर अपने में लाना ही इस नय का प्रयोजन है।

(२) एकदेश शुद्धनिश्चयनय

(अपनी पर्यायों में अभेद करता है।)

१) यह नय एकदेश शुद्ध पर्यायों में अभेद को विषय बनाता है।
२) स्व के लक्ष्य से उत्पन्न होनेवाले एकदेश निर्मल पर्याय सम्यक्दर्शन को आत्मा कहनेवाला है।
जैसे ह्न मैं सम्यग्दृष्टि हूँ।
३) निर्मल किन्तु अपूर्ण पर्याय के साथ अभेदता को विषय बनाने वाला है।
४) यह नय एकदेश शुद्ध-गुण और पर्यायों को जीव कहता है। जैसे ह्न मैं सम्यग्दृष्टि हूँ।
५) जीव भाव पर्यायरूप संवर, निर्जरा और मोक्ष पर्यायों का कर्त्ता इस नय से है।
जैसे ह्न मुनिराज को शुद्धोपयोगी कहना।
६) यह नय मुक्तिमार्ग के साथ एकता स्थापित करता है।
७) यह नय क्षयोपशम भाव में विद्यमान शुद्धता के अंश के साथ आत्मा की अभेदता बताता है।
८) सांसारिक सुख-दुःख और राग-द्वेष कर्मजनित हैं।
९) इसका विषय मोक्षमार्गरूप पर्याय से परिणत आत्मा, मोक्षमार्गरूप होने से साधन है, और प्रगट करने की अपेक्षा एकदेश उपादेय है।
१०) यह नय पर्यायस्वभाव को ग्रहण करता है।
११) चतुर्थ गुणस्थान से बारहवें तक होता है।
१२) विकारी पर्याय से पृथकता स्थापित कर अपूर्ण निर्मलपर्याय से एकता स्थापित करना ही इस नय का प्रयोजन है।

(३) साक्षात्शुद्ध निश्चयनय

(अपनी पर्यायों में अभेद करता है।)

१) यह नय पूर्ण शुद्ध पर्यायों में अभेद को विषय बनाता है।
२) स्व के लक्ष्य से हुई पूर्ण निर्मल केवलज्ञान पर्याय को आत्मा कहनेवाला है।
जैसे ह्न वह केवलज्ञानी है।
३) निरूपाधि गुण-गुणी में अभेद को विषय बनाने वाला है।
४) यह नय पूर्ण शुद्ध गुण और पर्यायों को जीव कहता है। जैसे ह्न केवलज्ञानी जीव।
५) यह नय क्षायिकभावों का कर्त्ता-भोक्ता कहता है। जैसे ह्न क्षपकश्रेणी वाले मुनिराज।
६) यह नय पूर्ण शुद्ध पर्याय के साथ एकता स्थापित करता है।
७) यह नय क्षायिकभावों के साथ अभेदता बताता है।
८) इस नय से सांसारिक सुख-दुःख और राग-द्वेष की उत्पत्ति ही नहीं है।
९) इसका विषय मोक्षरूप से परिणत आत्मा मोक्षरूप होने से साध्य है। और प्रगट करने की अपेक्षा उपादेय है।
१०) यह नय पर्यायस्वभाव को ग्रहण करता है।
११) चतुर्थ गुणस्थान से सिद्धों तक होता है।
१२) अपूर्ण पर्याय भी नष्ट होने वाली है, अतः उसे हेय बताकर सादि-अनन्त निर्मलपर्याय से अभेदता बताना ही इसका प्रयोजन है।

(४) परमशुद्ध निश्चयनय

(पर्यायों की चर्चा ही नहीं करता)

१) यह नय पर्यायों से रहित त्रिकाली द्रव्य को विषय बनाता है।
२) समस्त पर्यायों से रहित त्रिकाल स्वभाव को आत्मा कहने वाला है।
जैसे ह्न कारण शुद्ध जीव।
३) समस्त विकारी और अविकारी पर्यायों से आत्मा को भिन्न बताने वाला है।
४) यह नय त्रिकाल शुद्ध सामान्यभाव का ग्रहण करता है। जैसे ह्नत्रिकाली ध्रुव परमात्मा।
५) यह नय जीव को अकर्त्ता-अभोक्ता कहता है।
६) यह नय द्रव्यस्वभाव के साथ एकता स्थापित करता है।
७) यह नय पारिणामिक भाव से अभेदता बताता है।
८) इस नय से सांसारिक सुख-दुःख और राग-द्वेष हैं ही नहीं।
९) इसका विषय बन्ध मोक्ष से रहित शुद्धात्मा ध्येय है और आश्रय करने की अपेक्षा उपादेय है।
१०) यह नय द्रव्यस्वभाव को ग्रहण करता है।
११) सभी गुणस्थानों में और गुणस्थानातीत भी होता है।
१२) निर्मल पर्याय अनादि से नहीं होने के कारण उससे भी पृथकता स्थापित कर अनादि-अनंत रहनेवाले द्रव्यस्वभाव में एकता स्थापित करना ही इस नय का प्रयोजन है।

दिए हुए शब्दों में से रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

प्रश्न १. ..... नय ही सम्यक्नय होते हैं, ... नहीं। (निरपेक्ष, सापेक्ष)

प्रश्न २. निरपेक्ष नय ..... होते हैं। (सम्यक्, मिथ्या)

प्रश्न ३. निरपेक्ष नय ..... कहलाते हैं। (सुनय, दुर्नय)

प्रश्न ४. ..... की सार्थकता उसके निषेध में है। (निश्चय, व्यवहार)

प्रश्न ५. ..... के बिना निश्चय समझा नहीं जा सकता और व्यवहार को छोड़े बिना ..... पाया नहीं जा सकता। (निश्चय, व्यवहार)

प्रश्न ६. ..... नय के निषेध के बाद निश्चयनय का पक्ष (विकल्प) भी विलय को प्राप्त हो जाता है। जब तक ..... रहता है, तब तक निर्विकल्प अनुभूति प्रगट नहीं होती। (नयरूप विकल्प, व्यवहार)

प्रश्न ७. जो जीव निश्चय-व्यवहार का स्वरूप ..... व्यवहार के विषय को ..... निश्चयनय के विकल्प को ..... निश्चयनय की विषयभूत वस्तु का आश्रय लेकर विकल्पातीत, नयपक्षातीत स्वानुभूति करता है, वह शीघ्र सच्चा सुख प्राप्त करता है। (छोड़कर, तोड़कर, समझकर)

प्रश्न ८. ..... का पक्ष छोड़ना है, विषयभूत अर्थ भी छोड़ना है। ..... का पक्ष छोड़ना है, विषयभूत अर्थ नहीं छोड़ना है। (निश्चयनय, व्यवहारनय)।

प्रश्न ९. व्यवहार के बिना ..... का लोप हो जाएगा, निश्चय के बिना ..... का लोप हो जाएगा। (तत्त्व, तीर्थ)

प्रश्न १०. उपदेश की प्रक्रिया में ..... प्रधान है, अनुभव की प्रक्रिया में ..... प्रधान है। (निश्चयनय, व्यवहारनय)।

उत्तर : १. सापेक्ष, निरपेक्ष। २. मिथ्या। ३. दुर्नय। ४. व्यवहार। ५. व्यवहार, निश्चय। ६. व्यवहार, नयरूप विकल्प। ७. समझकर, छोड़कर, तोड़कर। ८. व्यवहारनय, निश्चयनय। ९. तीर्थ, तत्त्व। १०. व्यवहारनय, निश्चयनय।

निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए ह्न

प्रश्न १. नय किसे कहते हैं?

प्रश्न २. नयाभास किसे कहते हैं?

प्रश्न ३. अध्यात्म के मूल नय कितने हैं?

प्रश्न ४. व्यवहारनय किसे कहते हैं?

प्रश्न ५. निश्चयनय किसे कहते हैं?

प्रश्न ६. उपचरित कथन किसे कहते हैं? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न ७. निश्चयनय और व्यवहारनय में क्या अंतर है?

प्रश्न ८. व्यवहारनय कितने प्रकार का होता है? भेद-प्रभेद सहित नाम बताइए।

प्रश्न ९. असद्भूत व्यवहारनय किसे कहते हैं?

प्रश्न १०. सद्भूत व्यवहारनय किसे कहते हैं?

प्रश्न ११. असद्भूत व्यवहारनय नाम की सार्थकता स्पष्ट करिए।

प्रश्न १२. सद्भूत व्यवहारनय नाम की सार्थकता स्पष्ट करिए।

प्रश्न १३. उपचरित असद्भूत व्यवहारनय किसे कहते हैं?

प्रश्न १४. अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय किसे कहते हैं?

प्रश्न १५. संयोग संबंध किसे कहते हैं?

प्रश्न १६. संश्लेष संबंध किसे कहते हैं?

प्रश्न १७. आत्मा शरीर से कितने प्रकार के संबंध स्थापित करता है?

प्रश्न १८. उपचरित सद्भूत व्यवहारनय किसे कहते हैं?

प्रश्न १९. अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय किसे कहते हैं?

प्रश्न २०. उपचरित सद्भूत व्यवहारनय नाम की सार्थकता बताइए।

प्रश्न २१. अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय नाम की सार्थकता बताइए।

प्रश्न २२. निश्चयनय कितने प्रकार का होता है? भेद-प्रभेद सहित नामबताइए।

प्रश्न २३. अशुद्ध निश्चयनय किसे कहते हैं?

प्रश्न २४. अशुद्ध निश्चयनय नाम की सार्थकता बताइए।

प्रश्न २५. एकदेश शुद्ध निश्चयनय किसे कहते हैं?

प्रश्न २६. साक्षात् शुद्ध निश्चयनय किसे कहते हैं?

प्रश्न २७. परम शुद्ध निश्चयनय किसे कहते हैं?

प्रश्न २८. उपचरित सद्भूत व्यवहारनय और अशुद्ध निश्चयनय में क्या अन्तर है?

प्रश्न २९. द्रव्यस्वभाव ग्रहण करनेवाला कौनसा नय है?

प्रश्न ३०. पर्याय स्वभाव ग्रहण करनेवाले कौनसे नय हैं?

प्रश्न ३१. निम्न कथन किस नय के हैं ह्न

१. देश मेरा है।
२. मैं हँसता हूँ।
३. रुपये-पैसे मेरे हैं।
४. मैं बुद्धिमान हूँ।
५. मेरा प्रतिबिम्ब है।
६. सर्व जीव हैं सिद्ध सम।
७. मम स्वरूप है सिद्ध समान।
८. मुझे अपने भाई से बहुत ही **स्नेह** है।
९. मुझे **अपनी बहन** से बहुत ही स्नेह है।
१०. मुझमें ज्ञान है।
११. ज्ञान आत्मा का गुण है।
१२. बाहुबली केवलज्ञानी है।
१३. सिद्ध समान सदा पद मेरो।
१४. कारण शुद्ध जीव।
१५. कार्य शुद्ध जीव।
१६. वह सम्यग्दृष्टि है।
१७. तीर्थंकर जन्म से पर्याय में सम्यग्दृष्टि होते हैं।
१८. जीव अकत्री है - अभोक्ता हैं।
१९. मैं क्रोधी हूँ।
२०. जीव के बंध-मोक्ष होते ही नहीं।

नयचक्र प्रश्नोत्तर

प्रश्न १. नयों का स्वरूप समझना आवश्यक क्यों है?

उत्तर : १) जिनागम को समझने के लिए।
२) वस्तुस्वरूप के सच्चे ज्ञान के लिए।
३) (अनेकान्त स्वरूप) आत्मा के सही के लिए।
४) आत्मानुभव के लिए।
५) सांसारिक दुःखों से बचने के लिए।
६) मिथ्यात्व के नाश के लिए।
७) सच्चे सुख की प्राप्ति के लिए।

प्रश्न २. नय अंशग्राही होते हैं या सर्वग्राही?

उत्तर : अंशग्राही।

प्रश्न ३. नय अंशग्राही क्यों होते हैं?

उत्तर : नयों की प्रवृत्ति वस्तु के एकदेश में ही होती है अतः नयों को अंशग्राही कहते हैं।

प्रश्न ४. समस्त वस्तुओं का स्वरूप कैसा है?

उत्तर : अनेकान्तात्मक।

प्रश्न ५. क्या अनन्तधर्मात्मक वस्तु को एक साथ जाना जा सकता है?

उत्तर : हाँ।

प्रश्न ६. क्या अनंतधर्मात्मक वस्तु को एक साथ कहा जा सकता है?

उत्तर : नहीं।

प्रश्न ७. नयों का कथन सापेक्ष होता है या निरपेक्ष?

उत्तर : सापेक्ष।

प्रश्न ८. विविक्षित धर्म किसे कहते हैं?

उत्तर : मुख्य धर्म को।

प्रश्न ९. अविविक्षित धर्म किसे कहते हैं?

उत्तर : गौण धर्म को।

प्रश्न १०. गौण शब्द से क्या तात्पर्य है?

उत्तर : प्रतिपक्षी धर्मों के संबंध में चुप्पी ही गौणता है। गौणता में प्रतिपक्षी धर्मों का विधि-निषेध कुछ नहीं किया जाता अपितु उन धर्मों के संबंध में मौन रहा जाता है।

प्रश्न ११. क्या मुख्यता-गौणता वस्तु में विद्यमान धर्मों की अपेक्षा होती है?

उत्तर : नहीं, वस्तु में सभी धर्म प्रतिसमय अपनी पूर्ण हैसियत से विद्यमान रहते हैं।

प्रश्न १२. मुख्यता-गौणता वस्तु में किस अपेक्षा होती है?

उत्तर : वस्तु में मुख्यता-गौणता वक्ता की इच्छानुसार होती है; क्योंकि विवक्षा-अविवक्षा वाणी के भेद हैं, वस्तु के नहीं।

प्रश्न १३. वाणी में मुख्य-गौण का भेद क्यों होता है?

उत्तर : क्योंकि वाणी में वस्तु के सभी धर्मों को एक साथ कहने की सामर्थ्य नहीं है।

प्रश्न १४. क्या नयों के कथन से अविविक्षित धर्मों का निषेध किया जाता है?

उत्तर : नहीं।

प्रश्न १५. व्यवहार का कार्य क्या है?

उत्तर : स्व में भेद करना, पर से अभेद करना, संयोगों का ज्ञान कराना और वस्तुस्वरूप समझाना है।

प्रश्न १६. व्यवहारनय का फल क्या है?

उत्तर : संसार।

प्रश्न १७. व्यवहारनय भूतार्थ है या अभूतार्थ?

उत्तर : अभूतार्थ।

प्रश्न १८. क्या व्यवहारनय पूर्णतः अभूतार्थ है? सतर्क उत्तर दीजिए।

उत्तर : नहीं, व्यवहारनय पूर्णतः अभूतार्थ नहीं है, कथंचित् अभूतार्थ है। व्यवहारनय निश्चयनय की अपेक्षा अभूतार्थ है, किन्तु लोक-व्यवहाररूप में वह भूतार्थ है।

प्रश्न १९. व्यवहारनय को अभूतार्थ क्यों कहा है?

उत्तर : व्यवहारनय के विषयभूत भेद और संयोग के आश्रय से आत्मा का अनुभव नहीं होता, मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती। इस अपेक्षा से व्यवहारनय को अभूतार्थ कहा है।

प्रश्न २०. व्यवहारनय के विषयभूत भेद और संयोगों का अस्तित्व होता है या नहीं?

उत्तर : व्यवहारनय के विषयभूत भेद और संयोगों का अस्तित्व होता है।

प्रश्न २१. क्या व्यवहारनय का विषय ध्येय है?

उत्तर : नहीं, व्यवहारनय का विषय ध्येय नहीं, ज्ञेय है।

प्रश्न २२. निश्चय का कार्य क्या है?

उत्तर : पर से भेद कर स्व में अभेद करना। व्यवहार के निषेध के साथ-साथ स्वयं के पक्ष का भी निषेध कर जीव को नयातीत आत्मा में स्थापित करना है।

प्रश्न २३. निश्चयनय का फल क्या है?

उत्तर : मोक्ष।

प्रश्न २४. निश्चयनय भूतार्थ है या अभूतार्थ?

उत्तर : भूतार्थ।

प्रश्न २५. निश्चयनय का विषय क्या है?

उत्तर : अभेद अखण्ड आत्मा।

प्रश्न २६. निश्चयनय को भूतार्थ क्यों कहते हैं?

उत्तर : निश्चयनय के आश्रय से सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होती है, मुक्ति की प्राप्ति होती है इसी कारण उसे भूतार्थ कहते हैं।

प्रश्न २७. व्यवहार और निश्चय में कौन सा संबंध है?

उत्तर : निषेध्य-निषेधक।

प्रश्न २८. निश्चय और व्यवहार में कौन सा संबंध है?

उत्तर : प्रतिपाद्य-प्रतिपादक।

प्रश्न २९. व्यवहारनय निश्चयनय का प्रतिपादक क्यों है?

उत्तर : व्यवहारनय अभेद ह्न अखण्ड वस्तु के भेद करके अभेद ह्न अखण्ड वस्तु को ही समझाने के कारण निश्चय का प्रतिपादक है।

प्रश्न ३०. निश्चय और व्यवहार किस अपेक्षा विरोधी हैं?

उत्तर : विषयगत विरोध के कारण दोनों नय एक दूसरे के विरोधी हैं। व्यवहार का काम भेद करके समझाना है और संयोग का ज्ञान कराना है अतः वह अभेद-अखण्ड वस्तु में भेद करके समझाता है और संयोगों का ज्ञान कराता है। निश्चय का काम व्यवहार का निषेध करना है।

प्रश्न ३१. क्या निश्चय-व्यवहार एक दूसरे के पूरक हैं?

उत्तर : हाँ है। दोनों नय एक दूसरे के पूरक हैं। क्योंकि वस्तु के परस्पर विरोधी धर्मों में से एक का कथन निश्चय और दूसरे का कथन व्यवहार करता है। अतः वस्तु के संपूर्ण प्रकाशन और प्रतिपादन के लिए दोनों नय आवश्यक हैं।

प्रश्न ३२. अनुभव को नयपक्षातीत किस अपेक्षा कहा है?

उत्तर : अनुभव में निश्चयनय संबंधी विकल्प नहीं रहते ह्न इस अपेक्षा अनुभव को नयपक्षातीत कहा है।

प्रश्न ३३. 'निश्चयनय के आश्रय से अनुभव होता है' ह्न यह किस अपेक्षा कहा है?

उत्तर : निश्चयनय के विषयभूत अर्थ की अपेक्षा से निश्चयनय का आश्रय कहा है।

प्रश्न ३४. दुनिया की मान्यता का प्रतिनिधित्व करने वाला कौन सा नय है?

उत्तर : असद्भूत व्यवहारनय।

प्रश्न ३५. लौकिक वचन व्यवहार किस नय पर आधारित हैं?

उत्तर : असद्भूत व्यवहारनय।

प्रश्न ३६. भिन्न वस्तुओं में अभेद व्यवहार करनेवाला कौन सा नय है?

उत्तर : असद्भूत व्यवहारनय।

प्रश्न ३७. अभिन्न वस्तुओं में भेद व्यवहार करनेवाला कौन सा नय है?

उत्तर : सद्भूत व्यवहारनय।

प्रश्न ३८. अखण्ड द्रव्य के बीच भेद डालकर समझने-समझाने का कार्य कौनसा नय करता है?

उत्तर : सद्भूत व्यवहारनय।

प्रश्न ३९. भेद और विकार का ज्ञान कौन सा नय कराता है?

उत्तर : सद्भूत व्यवहारनय।

प्रश्न ४०. उपचार को विषय बनानेवाला कौन सा नय है?

उत्तर : अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय।

प्रश्न ४१. उपचार में उपचार को विषय बनानेवाला कौन सा नय है?

उत्तर : उपचरित असद्भूत व्यवहारनय।

प्रश्न ४२. सदाचार की सीमा का प्रतिपादक कौन सा नय है?

उत्तर : उपचरित असद्भूत व्यवहारनय।

प्रश्न ४३. पुण्य-पाप के उदय में मिले संयोगों को कौन सा नय अपना कहता है?

उत्तर : उपचरित असद्भूत व्यवहारनय।

प्रश्न ४४. मानव एवं पशु, स्वधन एवं परधन, स्वस्त्री और परस्त्री में अंतर स्पष्ट करने वाला कौन सा नय है?

उत्तर : उपचरित असद्भूत व्यवहारनय।

प्रश्न ४५. आत्मा और शरीर को एक कहने वाला कौन सा नय है?

उत्तर : अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय।

प्रश्न ४६. शरीर को सजीव किस नय से कहा जाता है?

उत्तर : अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय।

प्रश्न ४७. रात्रि भोजन का त्याग किस नय से कहा जाता है?

उत्तर : अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय।

प्रश्न ४८. अहिंसात्मक आचरण का प्रतिपादन करनेवाला कौन सा नय है?

उत्तर : अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय।

प्रश्न ४९. अपनी भूलों का प्रतिपादन करनेवाला कौन सा नय है?

उत्तर : उपचरित सद्भूत व्यवहारनय।

प्रश्न ५०. उपचरित सद्भूत व्यवहारनय का प्रयोजन क्या है?

उत्तर : हम अपनी भूलों को स्वीकार कर उसकी पुनरावृत्ति न करें।

प्रश्न ५१. जीव और ज्ञान को भिन्न-भिन्न किस नय से कहा जाता है?

उत्तर : अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय।

प्रश्न ५२. जीव की पूर्ण निर्विकारी पर्याय या गुण को कौन सा नय अपना विषय बनाता है?

उत्तर : अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय।

प्रश्न ५३. अपने शुद्ध स्वरूप को समझने के लिए कौन सा नय उपयोगी है?

उत्तर : अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय।

प्रश्न ५४. जीव को अपने द्वारा किए गए अपराधों की स्वीकृति कौन सा नय कराता है?

उत्तर : अशुद्ध निश्चयनय।

प्रश्न ५५. साधक अवस्था में भी सिद्धोंवत् पूर्ण शुद्ध जीव किस नय से कहा जाता है?

उत्तर : एकदेशशुद्ध निश्चयनय।

प्रश्न ५६. शुद्ध क्षायिकभावों के साथ अभेद कौन सा नय बताता है?

उत्तर : साक्षात्शुद्ध निश्चयनय।

प्रश्न ५७. त्रिकाली ध्रुव स्वभाव को कौन सा नय अपना विषय बनाता है?

उत्तर : परमशुद्ध निश्चयनय।

प्रश्न ५८. कौन सा नय कभी भी व्यवहारपने को प्राप्त नहीं होता?

उत्तर : परमशुद्ध निश्चयनय।

प्रश्न ५९. आठों नय क्या काम करते हैं?

उत्तर : हमें सारी दुनिया से अलगकर शुद्धात्मा तक पहुँचाते हैं।

लेखिका की अन्य कृतियाँ

शिशु वर्ग :

१. जैन नर्सरी (हिन्दी, अंग्रेजी, गुज. मराठी, तमिल)
२. जैन के.जी. भाग-१ (हिन्दी, अंग्रेजी, गुज. मराठी, तमिल)
३. जैन के.जी. भाग-२ (हिन्दी, अंग्रेजी, गुज. मराठी, तमिल)
४. जैन के.जी. भाग-३ (हिन्दी, अंग्रेजी, गुज. मराठी, तमिल)
५. जैन कलर बुक भाग -१
६. जैन कलर बुक भाग- २

बालवर्ग :

१. जैन जी.के. भाग-१ (हिन्दी, अंग्रेजी)
२. जैन जी.के. भाग-२ (हिन्दी, अंग्रेजी)
३. जैन जी.के. भाग-३　　४. जैन जी.के. भाग-४
५. चलो पाठशाला, चलो सिनेमा भाग-१
६. चलो पाठशाला, चलो सिनेमा भाग-२
७. आगम प्रवेश भाग-१, २,३　　८. सीखें हम गाते-गाते

किशोर वर्ग :

१. जैन जी.के. भाग-५　　२. जैन जी.के. भाग-६
३. जैन जी.के. भाग-७　　४. जैन जी.के. भाग-८
५. जैन जी.के. भाग-९　　६. जैन जी.के. भाग-१०
७. शब्दों की रेल　　८. मुझमें भी एक दशानन रहता है
९. संस्कार का चमत्कार
१०. विचार के पत्र : विकार के नाम　　११. राम कहानी

युवावर्ग : (सभी वर्ग

१. मुक्ति की युक्ति
२. तलाश : सुख की　　३. सत्ता का सुख
४. प्रमाणज्ञान　　५. जैनदर्शन सार
६. आचार्य अमृतचन्द्र और उनका पुरुषार्थसिद्ध्युपाय
७. आचार्य कुन्दकुन्द और उनके टीकाकार : एक समालोचनात्मक अध्ययन
८. एक संभावना यह भी
९. आत्मानुभूति कैसे?
१०. नयचक्र गाईड
कुल योग ३१

जैन गेम्स : (सभी वर्ग)

१. नो टाइम पास　　२. हमारी लाईफ
३. लगे रहो जीवराज